इतना सस्ता और कहाँ, सौदा मिलेगा
बीज दो ज़मीन को, पौधा मिलेगा!

गुलज़ार

बाल विज्ञान पत्रिका अप्रैल 2014

चकमक

मूल्य ₹ 30

बाल विज्ञान पत्रिका

चकमक

अंक 331 अप्रैल 2014

कौआ खड़ा है

अम्मी कहती हैं "बैठा है"
पर राशिद
इस बात पर अड़ा है
कि कौआ "खड़ा है"

चित्रः कनक

4	बोली रंगोली
6	एक था हाजी एक था नाजी
8	तीन बिल्लियाँ
10	शब्दों और अर्थों का भण्डार है दिमाग
11	बाघों का शिकार
14	साबुन और मछली
16,17,21	मेरा पन्ना
18	सयानी
22	मुर्गे का किला
24	यात्रा एक अनोखे पक्षी द्वीप की!
26	कॉफी के धब्बे किनारे पर क्यों गहरे होते हैं?
28	मुकाम पोस्ट फलाना-ठिकाना, अमुकजी को मिले
30	अकाल और उसके बाद
32	रूखी-सुखी
34	सुनो कहानी एक फूल की
41	माथापच्ची
42	बोली रंगोली
43	चित्रपहेली
44	दिविक रमेश की दो कविताएँ

हाशिए के चित्र
अरविन्द गुप्ता की पुस्तक
थम्ब्स डाउन से साभार

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

सहायक सम्पादक
कविता तिवारी

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

आवरण चित्र
चित्रः अतनु रॉय

सम्पादकीय सलाहकार
रेक्स डी रोज़ारियो

डिज़ाइन
दिलीप चिंचालकर

इस अंक में

क्योंकि बाघ अपने इलाके में किसी अन्य शिकारी जानवर को बर्दाश्त नहीं करते हैं
11

उनकी देखा-देखी मेरे दादाजी ने भी सुबह-सुबह लिखना शुरू कर दिया।
34

अचानक बिल्लियों को लगा जैसे उन्हें तस्वीर से काट के निकाला जा रहा हो।
8

जो भी हो दो दिन बाद ही हमारे घर की छत पर अचानक प्रकट हुई सयानी जैसी ही नन्ही गिलहरी
18

28
लायब्रेरी के निकटवाला खम्भा जिसपे लिखा है डोंगरे का बालामृत

विप्रो एप्लाइंग थॉट इन स्कूल्स के वित्तीय सहयोग से विकसित

वितरण
झनक साहू

सहयोग
मिताली अहीर
वरुण ग्रोवर
मिहिर
प्रभात
कमलेश यादव

सदस्यता शुल्क

एक प्रतिः	30.00	(व्यक्तिगत)
	50.00	(संस्थागत)
वार्षिकः	300.00	(व्यक्तिगत)
	500.00	(संस्थागत)
तीन सालः	800.00	(व्यक्तिगत)
	1350.00	(संस्थागत)
आजीवनः	4000.00	(व्यक्तिगत)
	6000.00	(संस्थागत)

सभी डाक खर्च हम देंगे। चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं। भोपाल के बाहर के चैक में 80.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर,
भोपाल, म.प्र. 462 016
फोनः (0755) 4252927, 2550976, 2671017
फैक्सः (0755) 2551108
e mail - chakmak@eklavya.in
e mail - circulation@eklavya.in
www.chakmak.eklavya.in
www.eklavya.in

बोली रंगोली

इससे सस्ता और कहाँ सौदा मिलेगा
बीज दो ज़मीन को पौदा मिलेगा!

- गुलज़ार

तनीषा कौड़ा
छठी, शिक्षान्तर, गुड़गाँव, हरियाणा

दोस्तो, इस बार भी हमें तुम्हारे लगभग 450 चित्र मिले। गुलज़ार साब के पसन्दीदा पाँच चित्र यहाँ पेश हैं। इन पाँचों चित्रकारों को उपहार में चकमक की एक साल की सदस्यता मिलेगी। चौदह चित्र और भी हैं जो बहुत सधे हैं। इन्हें तुम पेज 42 पर देख सकते हो। मई की पंक्तियाँ हैं ..

भरी रहती है अन्दर से
कलम मुँह बन्द रखती है
मगर सब बोल देती है
वो जब कागज़ को चखती है

- गुलज़ार

Inchargeland Khongirem, 8th
Shillong, meghalaya

हो सकता है बड़े तुम्हें इसके अर्थ बताएँ। उनके अर्थ सुनो-समझो पर चित्र अपने मन का ही बनाओ...। कोशिश करना कि तुम्हारा चित्र हमें 15 अप्रैल तक मिल जाए। चित्र के साथ अपना पता, कक्षा, फोन नम्बर ज़रूर लिखना। हमारा पता है -

चकमक, एकलव्य, ई-10, शंकर नगर,
शिवाजी नगर, भोपाल -16 (फोन - 09425010115)

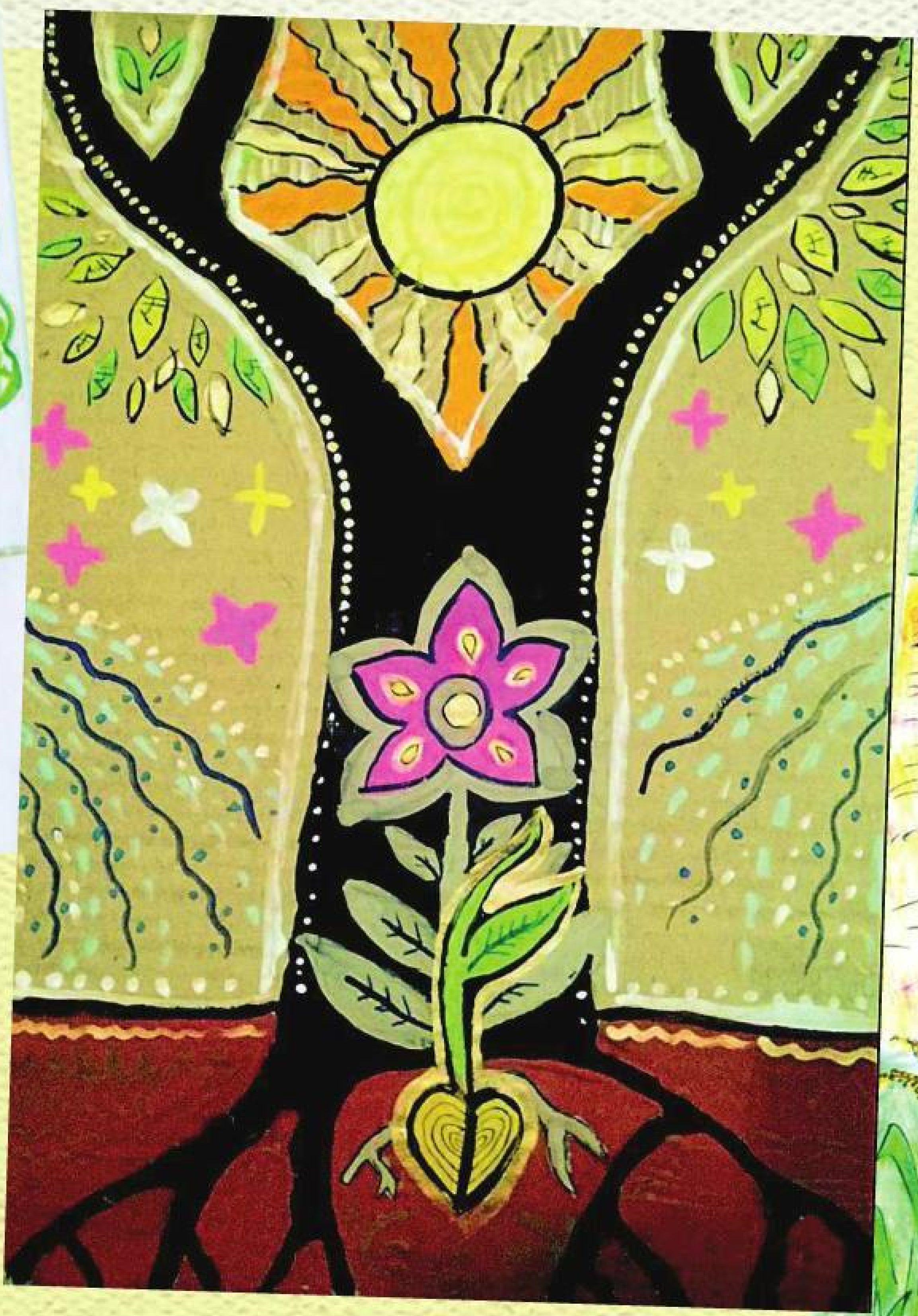

अमोघ भटनागर, ग्यारहवीं, ग्वालियर, म.प्र.

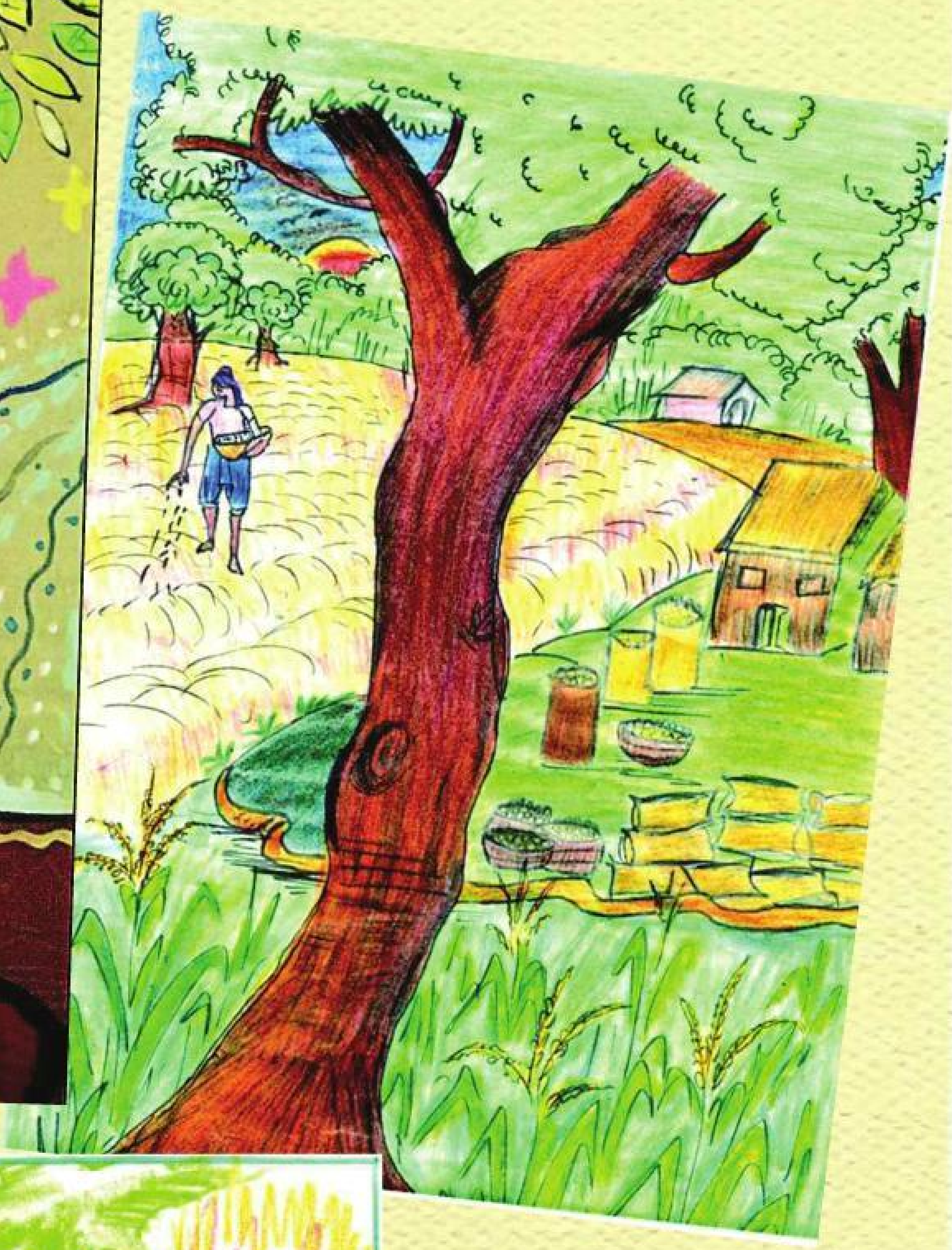

रेखा कुमारी
किलकारी, बिहार बाल भवन, पटना

पहले पाँच चित्र

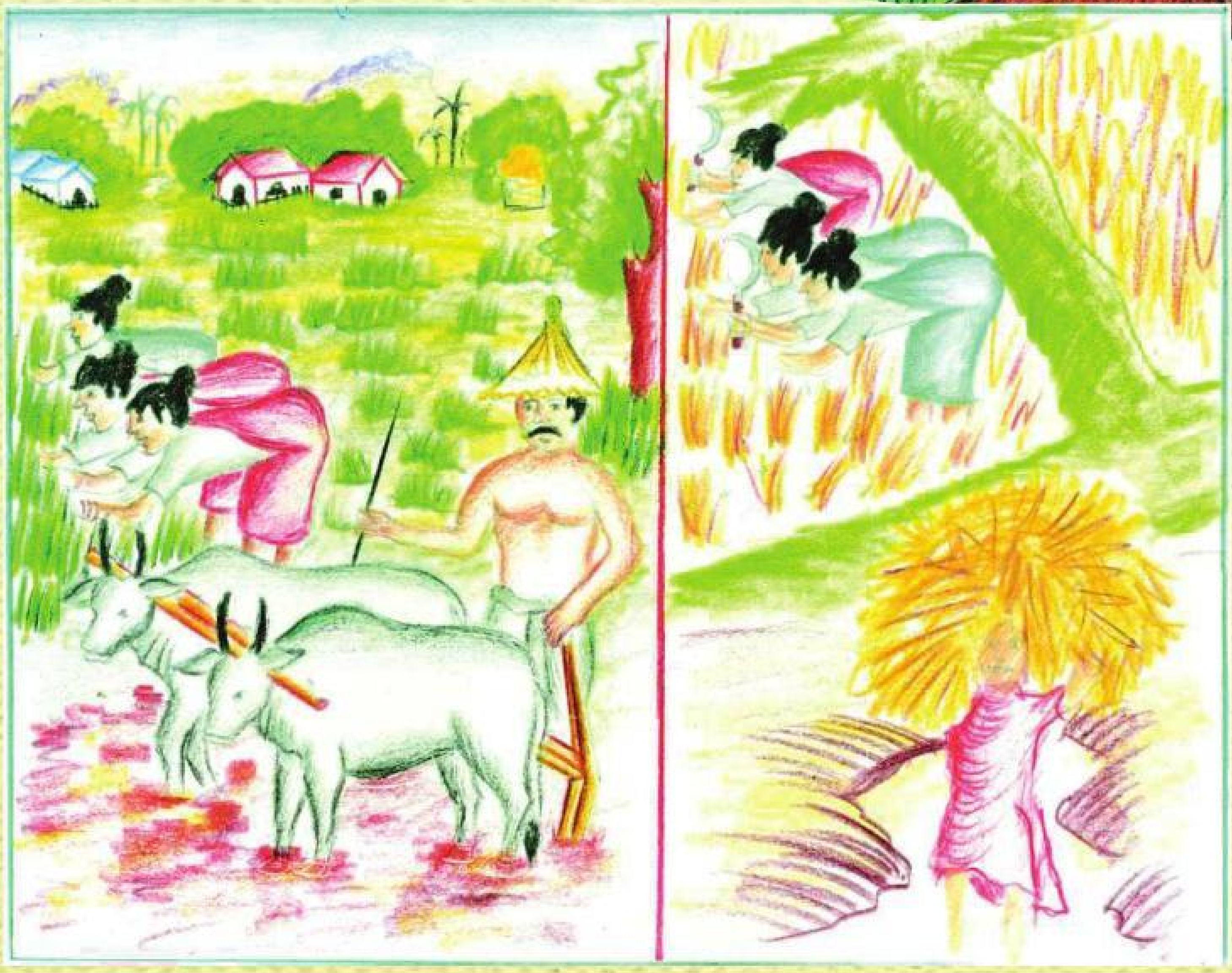

अर्नाल्ड लेशांगथेम, आठवीं, शिलांग, मेघालय

एक था हाजी एक था नाजी

छोटी इ बड़ी इ

स्वयं प्रकाश

एक दिन नाजी माट्साब का पढ़ाने का मूड नहीं था। वे कक्षा में आकर बैठ गए। जूते उतारे और पसरते हुए बोले, "सब अपनी-अपनी कॉपी निकालो और निबन्ध लिखो!"

बच्चों ने पूछा, "सर, विषय? किस विषय पर लिखें?"

नाजी माट्साब बोले, "परिवार। परिवार पर लिखो।"

बच्चे निबन्ध लिखने में व्यस्त हो गए और नाजी माट्साब ऊँघते-ऊँघते खर्राटे लेने लगे।

तभी एक बच्चे ने उन्हें झँझोड़कर उठाया।

"क्या बात है?" नाजी माट्साब ने पूछा।

"सर, परिवार में छोटी इ की मात्रा लगेगी या बड़ी इ की?"

नाजी सर बोले, "बड़ी इ की।" और फिर ऊँघने लगे।

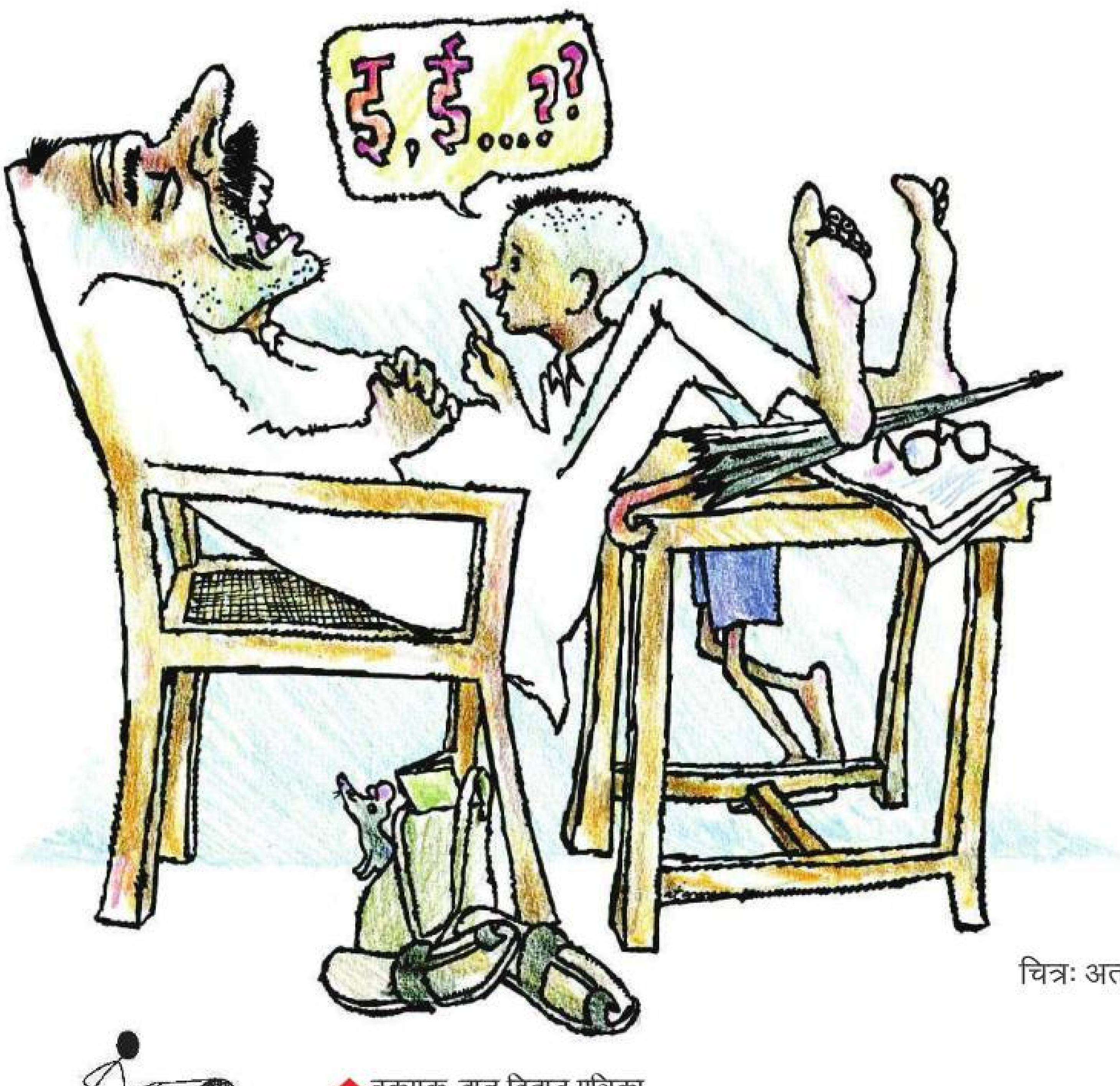

चित्रः अतनु राय

कुछ देर बाद उन्होंने महसूस किया कि क्लास में हल्ला मचा हुआ है और बच्चे आपस में लड़ रहे हैं। आधे बच्चे कह रहे हैं कि परिवार में छोटी इ की मात्रा लगेगी और आधे कह रहे हैं कि बड़ी इ की।

नाजी माट्साब को जगा देखकर सारे बच्चे एक साथ उन्हीं से पूछने लगे।

नाजी माट्साब ने मेज़ पर ज़ोर-से डस्टर फटकारा और बोले, "देखो ओ ओ! सबसे बड़ी चीज़ है अनुशासन। जिसका बड़ा परिवार है वो बड़े इ की लगा लो और जिसका छोटा परिवार है वो छोटी इ की लगा लो।"

एक और दिन

नाजी माट्साब का पढ़ाने का मूड नहीं था। उन्होंने अपनी टोपी उतारकर मेज़ पर रखी। जूते उतारकर दोनों पैर झाड़े, उन्हें मेज़ पर चढ़ाया और बोले, "सब लोग अपनी-अपनी कॉपी निकालो और निबन्ध लिखो।"

"सर विषय? आज किस विषय पर निबन्ध लिखें?"

नाजी माट्साब को कोई नया विषय नहीं सूझा। अचानक मेज़ पर रखी अपनी टोपी नज़र आई। बोले, "टोपी पर लिखो।" और ऊँघने लगे।

सारी कक्षा निबन्ध लिखने में व्यस्त हो गई। कक्षा में सन्नाटा छा गया। मानो कक्षा में कोई हो ही नहीं।

अचानक हाजी नाम का एक छोटा बच्चा डरते-डरते खड़ा हुआ और उसने कुछ पूछने के लिए अपना हाथ खड़ा किया।

नाजी माट्साब ने उसे देखकर पूछा, "हाँ बोलो हाजी! क्या बात है?"

"सर! मैली-कुचैली में कौन-सी मात्रा लगेगी?" हाजी ने डरते-डरते पूछा।

चित्रः अतनु राय

अपन और मक्खी

हाजी और नाजी एक होटल में बैठे चाय पी रहे थे। अचानक नाजी ने पूछा, "अच्छा बताओ, अभी अपनी चाय में मक्खी गिर जाए तो अपन क्या करेंगे?"

हाजी बोला, "अपन? हवन करेंगे हवन करेंगे हवन करेंगे!!"

"मज़ाक नहीं, सीरियसली! अच्छा मैं इस सवाल को थोड़ा अच्छी तरह पूछता हूँ। मान लो, एक अँग्रेज़ होटल में आता है, चाय मँगाता है और देखता है कि चाय में मक्खी पड़ी है। तो वो क्या करेगा?" नाजी ने पूछा।

"अँग्रेज़ मेरे खयाल से कुछ नहीं बोलेगा। चुपचाप अपना हैट उठाएगा और बाहर चला जाएगा।" हाजी ने कहा।

"और यदि किसी अमरीकी की चाय में मक्खी आ जाए तो?"

वह चिल्लाएगा, "यू!! कम हीयर। दूसरी लाओ। इसमें काली मक्खी पड़ी है।"

"और किसी हिन्दुस्तानी के चाय के कप में मक्खी आ जाए तो?"

दोनों ठहाका लगाकर हँसे।

हँसी रुकने पर हाजी बोला, "हिन्दुस्तानी के चाय के कप में मक्खी आ जाए तो वह मक्खी को निकालकर प्लेट में रख देगा, इधर-उधर देखकर तीन-चार घूँट चाय पी लेगा, मक्खी को वापस चाय के कप में डाल देगा और वेटर को बुलाकर कहेगा, "इस चाय में मक्खी है, दूसरी लाओ!"

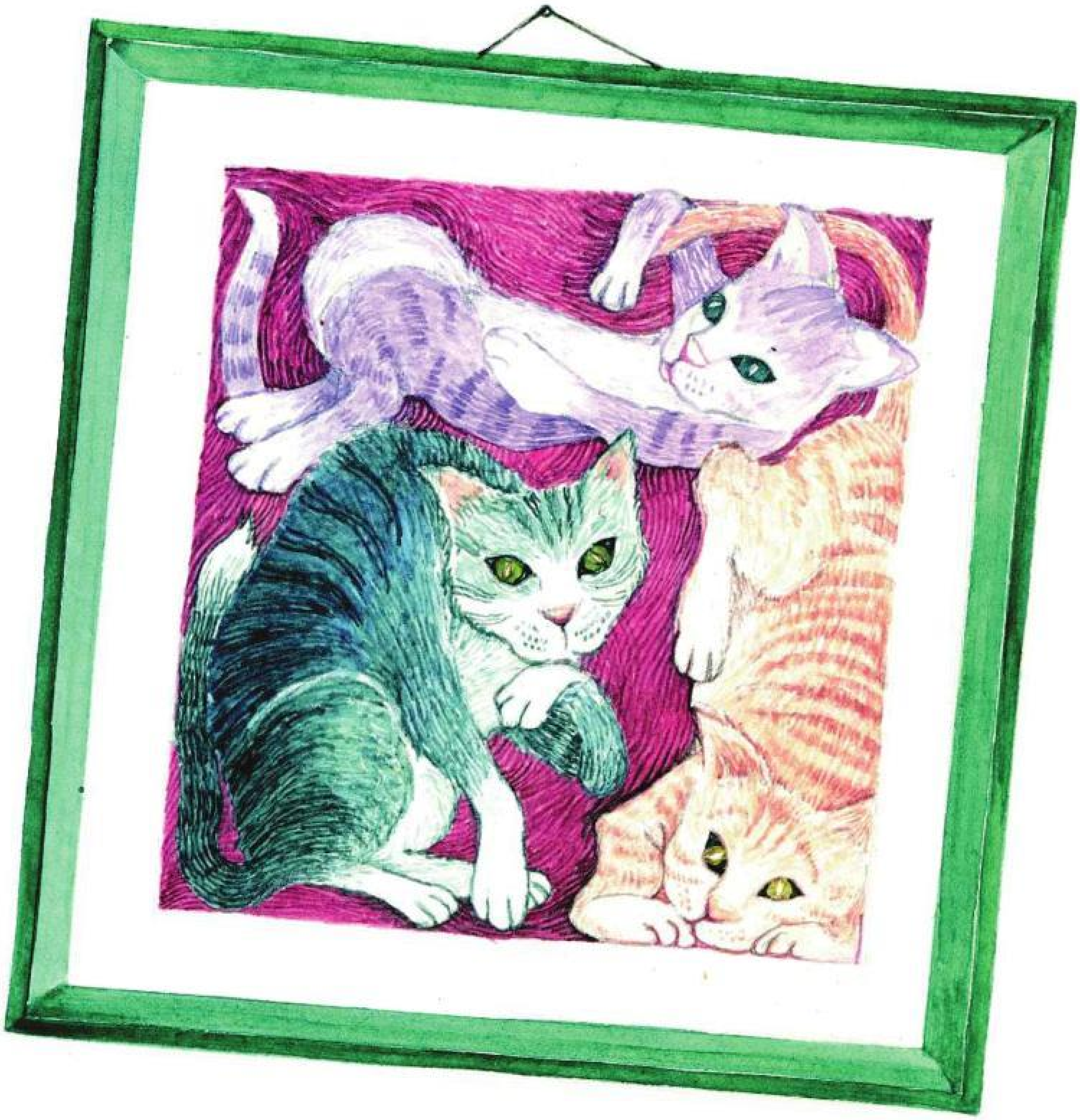

तीन बिल्लियाँ

सुरजीत सरकार

एक बार की बात है। एक तस्वीर में तीन बिल्लियाँ रहा करती थीं। जैसा कि सारी बिल्लियों के साथ होता है, ये बिल्लियाँ भी हर साल थोड़ी बड़ी हो जाती थीं।

अब तस्वीर तीन बढ़ती हुई बिल्लियों के लिए छोटी पड़ने लगी। तो जब वो चित्रकार सो जाता तो तीनों में आराम से बैठने की कशमकश शुरू हो जाती। वो इधर खिसकतीं, उधर घूमतीं, मुड़तीं, कुलबुलातीं, सटपटातीं...यानी कुछ ठीक से बैठ पाने के लिए जो कुछ कर सकती थीं, कर लेतीं।

एक सुबह वो आराम से बैठ पातीं इससे पहले चित्रकार कमरे में आ पहुँचा। बिल्लियों को इधर-उधर कूदता-फाँदता देख उसका चेहरा गुस्से से लाल हो गया। उसने सबसे बड़ा वाला ब्रुश उठाया और गुस्से में बिल्लियों की ओर झटक-सा दिया।

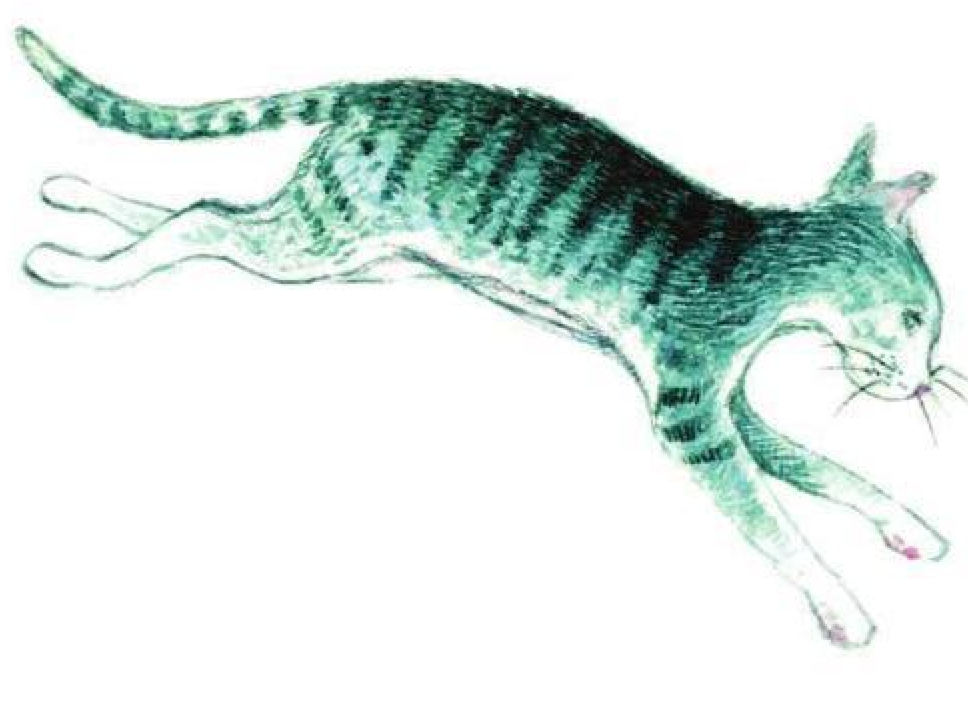

अचानक बिल्लियों को लगने लगा कि वो सिमटकर बक्से के आकार की हुई जा रही हैं। जैसे उन्हें तस्वीर से काट के निकाला जा रहा हो।

थोड़ी ही देर में एक नाखून, एक पाँव और फिर एक पूरी टाँग तस्वीर से बाहर निकली।

एक-एक कर फिर तीनों बिल्लियाँ बाहर कूद आईं। चित्रकार गुस्से से पागल हो रहा था।

वे उसके सामने से भागीं। उस कमरे से निकलीं। उस घर से निकलीं। और गली में आ गईं। चित्रकार उनके पीछे भागा। चीखता, रुको, रुको... नहीं तो मैं अभी तुम्हें मिटा दूँगा!!

पहली बिल्ली सबसे तेज़ दौड़ रही थी। और दौड़ते-दौड़ते जंगल में पहुँच गई। और बनी बड़ी बिल्ली... वो बिल्ली जो खुद दिखे बगैर सब देख पाती है।

दूसरी बिल्ली रात सरीखी काली थी। सो वो अँधेरे में छिप गई। और नदी में छलाँग लगा दी ताकि बेपरवाह मछलियों को पकड़ सके।

तीसरी बिल्ली छुटंकी थी। डरी हुई थी। और चाहती थी कि लोगों के साथ ही रहे जो उसे उस विशाल, गुस्सैल चित्रकार से बचा सकें। तो वो एक खूब सारे बच्चों वाले घर में घुस गई। सारे बच्चे बहुत ही दोस्ताना थे। और उसकी कहानी सुनते-सुनते कभी न थकते थे।

और उस चित्रकार का क्या हुआ? वो वापस घर चला गया। और एक नई तस्वीर बनाने लगा। पर अबकी बार उसने ध्यान रखा कि उसकी पेंटिंग में बहुत सारी खाली जगह हो। ताकि वहाँ की बिल्लियाँ आराम से फैल-फूट कर खेल सकें, बड़ी हो सकें। उन्हें पेंटिंग छोड़कर भागना न पड़े।

चित्रः दिलीप चिंचालकर

बिल्ली ने चूहे को पकड़ा और फिर कुत्ते ने बिल्ली को पकड़ा और फिर चोर ने कुत्ते को पकड़ा और फिर माली ने चोर को पकड़ा और फिर मकानमालिक ने चोर को पकड़ा और फिर मकानमालकिन ने मकान के किराएदार को पकड़ा फिर पुलिस ने मकानमालिक

शब्दों और अर्थों का भण्डार है दिमाग

इन्द्राणी रॉय

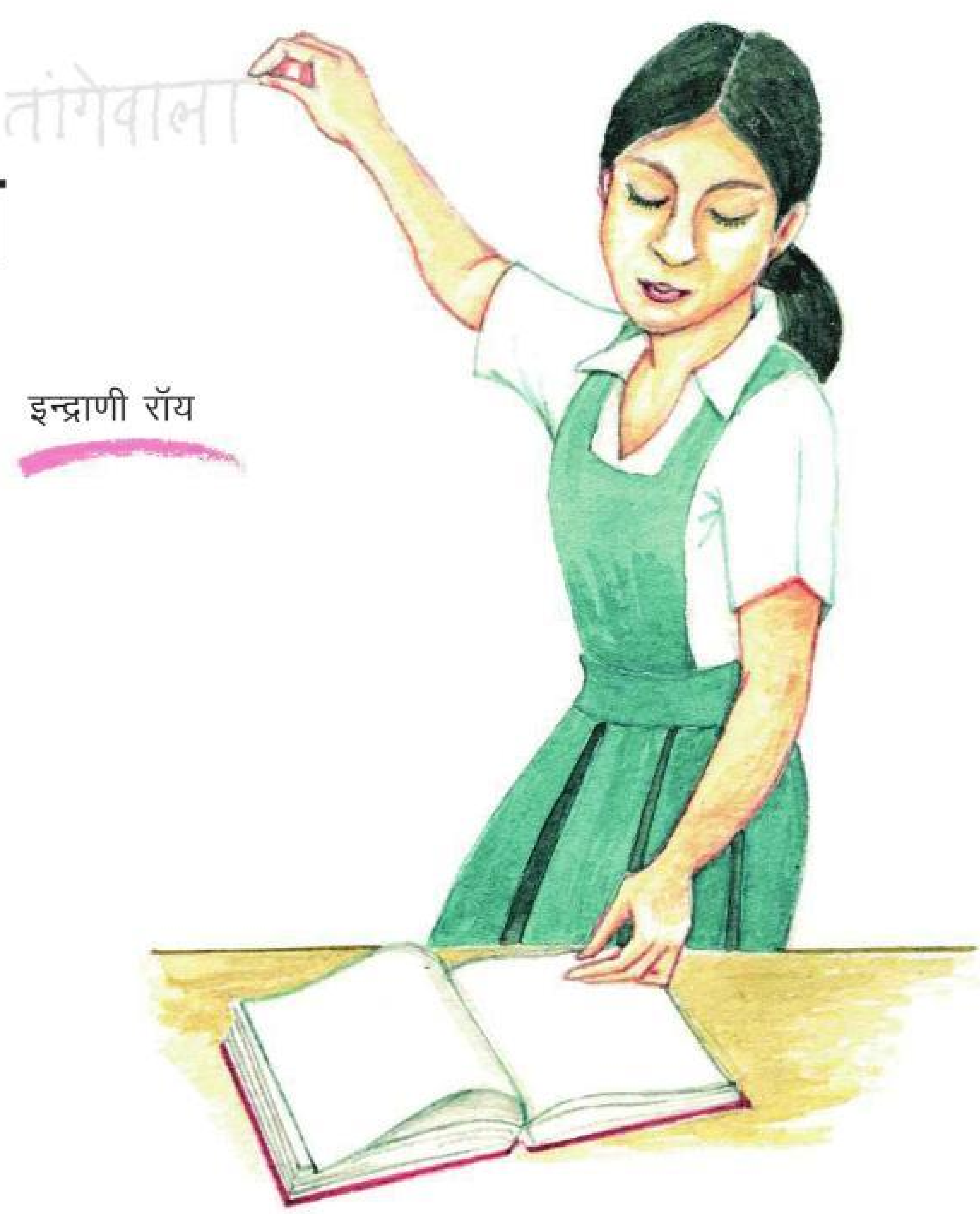

तुम्हारी भाषा में कितने अक्षर हैं यह तो तुम्हें पता होगा! वैसे यह ज़्यादा मुश्किल नहीं। किसी भी भाषा की अक्षरमाला बता देती है कि उस भाषा में कितने अक्षर हैं। हाँ, किसी भाषा में कितने शब्द हैं यह कहना थोड़ा मुश्किल है। पर फिर भी नामुमकिन नहीं। शब्द गिने जा सकते हैं। और इन्हें शब्दकोश में डाला जा सकता है। पर क्या यह बताया जा सकता है कि किसी भाषा में कितने वाक्य हैं? क्या किसी ने तुम्हारी भाषा के वाक्यों की गिनती की है? क्या तुम्हारी भाषा का कोई वाक्यकोश है?

स्कूल में जब किसी त्यौहार पर या किसी और विषय पर निबन्ध लिखने को कहा जाता है तो अकसर हम शब्दकोश से अलग-अलग शब्द चुनकर सुन्दर वाक्य बनाते हैं। तुम वाक्यकोश से वाक्य तो नहीं चुनते। किसी और के लेख की नकल उतारी तो टीचर झट-से समझ जाता है क्योंकि दोनों लेखों के वाक्य बिलकुल एक-से होते हैं। और टीचर जानते हैं कि भले ही शब्द एक समान हों पर ऐसा हो नहीं सकता कि दो बच्चे बिलकुल एक जैसे वाक्य रचेंगे।

हम सब में सीमित शब्दों से अनगिनत वाक्य बना लेने की क्षमता होती है। आम बोलचाल में रोज़ हम कितने ही नए वाक्य बना लेते हैं। ऐसा तो नहीं है कि हज़ार, दो हज़ार, पन्द्रह हज़ार या पन्द्रह लाख वाक्यों के पुलिन्दे से हम ज़िन्दगी भर काम चला लेते हैं। अगर रोज़-रोज़ नए-नए वाक्य न रचे जाते तो कहानियों में एक-से वाक्य मिलते, कवि नई-नई कविताएँ न लिख पाते और हम कुछेक वाक्यों से ही काम चलाते और सब एक-सी बातें करते।

सीमित शब्दों से अनगिनत वाक्य बना पाना भाषा की एक खासियत है। हमारे दिमाग में शब्दों और उनके अर्थों का भण्डार होता है। इसके साथ ही भाषा के वाक्य रचना के नियम मौजूद होते हैं। शब्दों को वाक्य रचना के नियमों में डालकर हम नए-नए वाक्य बना लेते हैं।

कुछेक शब्दों से ही हम जितना चाहे उतना लम्बा वाक्य बना सकते हैं। इतना लम्बा वाक्य कि हम उसे बोलते-बोलते थक जाएँ; दिन, महीने, साल बीत जाएँ पर वो वाक्य खत्म ही न हो जैसे –

बिल्ली ने चूहे को पकड़ा और फिर कुत्ते ने बिल्ली को पकड़ा और फिर चोर ने कुत्ते को पकड़ा और फिर माली ने चोर को पकड़ा और फिर मकानमालिक ने चोर को पकड़ा और फिर मकानमालकिन ने मकानमालिक को पकड़ा...

चित्रः दिलीप चिंचालकर

बाघों का शिकार

अमित कुमार

मध्यप्रदेश में है पन्ना का समृद्ध राष्ट्रीय उद्यान। 543 वर्ग किलोमीटर में फैला यह उद्यान बाघ, तेन्दुए, साम्भर, चिंकारा, रीछ, लोमड़ी, जंगली बिल्ली जैसे न जाने कितने जीवों का घर है। मैं डिस्कवरी चैनल के लिए बाघों पर एक फिल्म बना रहा था। वह करीब आठ महीने का प्रोजेक्ट था जिसमें बदलते मौसम में बाघ की दिनचर्या में आनेवाले बदलावों का अध्ययन करना था। टीम में मेरे साथ दो कैमरामैन और दो सहायक थे। पन्ना राष्ट्रीय उद्यान के अधिकारी भी समय-समय पर साथ रहते थे। उद्यान के निदेशक ने मुझे जंगल के उत्तर-पूर्वी इलाके में काम करने का सुझाव दिया। यह जंगल का काफी समृद्ध इलाका है। यहाँ दो जलाशय, घास के मैदान, साल का घना जंगल और थोड़ा चट्टानी क्षेत्र था। हमें बताया गया कि यह चार बाघिनों और दो बाघों का इलाका है। नर बाघ मादा के इलाके में आते-जाते रहते हैं पर कोई दूसरा नर वहाँ आ जाए तो उसे घुसपैठिया समझा जाता है। अपने सहयोगियों के साथ मैं तीन दिनों तक उस इलाके में घूमा। और फिर चार जगहों पर कैमरा सेट किए और दो पेड़ों पर मचान तैयार कराई। अब हम फिल्म शूट करने के लिए तैयार थे...

सबसे पहले हमें बाघिन दिखी। एकदम जवान और फुर्तीली। हमने उसका नाम ही फुर्तीली रख दिया। अब वो चौबीसों घण्टे हमारे कैमरों की निगरानी में रहने लगी थी। हर डॉक्यूमेंट्री फिल्म लैब में एडिट होने के बाद ही सही मायनों में फिल्म बनती है। दो सौ से ज़्यादा घण्टों की रिकॉर्डिंग से कोई एक घण्टे की फिल्म बनती है।

वह कड़क जाड़े का महीना था। पूरा जंगल कँपकँपा देनेवाली ठण्ड में सिमटा था। कोहरे से जंगल की रफ्तार सुस्त पड़ गई थी। जंगल में काम करना साहस और धैर्य दोनों की ज़बरदस्त माँग करता है।

सप्ताह भर बाद जब सूरज दुबका हुआ-सा निकला तो जंगल में जैसे गति आ गई थी। मचान पर बैठे हम भी धूप का आनन्द ले रहे थे कि सामने घास के मैदान में फुर्तीली घात लगाती हुई एकदम से प्रकट हो गई। वह एक चीतल पर ध्यान लगाए हुए थी और घास पर दबे पाँव धीरे-धीरे सरक रही थी। जब चीतल उसकी पकड़ की हद में आ गया तो फुर्तीली ने छलाँग लगाई। अगले ही पल चीतल की गर्दन फुर्तीली के जबड़ों में थी। कुछ देर ज़मीन पर पैर पटकने के बाद वो चीतल एकदम शान्त हो गया। फुर्तीली ने उसे छोड़ा और उसकी बगल में लेटकर सुस्ताने लगी। कुछ देर बाद वह उठी और चीतल की लाश को खींचकर झाड़ियों के बीच ले गई। घूमकर लाश का मुआयना करने के बाद वह उसके पिछले भाग की ओर बैठ गई। और उस हिस्से को चाटने लगी।

जंगल के मेरे अनुभव बताते हैं कि बाघ अपने शिकार को जहाँ से खाना शुरू करता है उस हिस्से को पहले चाटकर गीला कर लेता है। शायद इससे वहाँ की खाल काटने में आसानी होती हो। आधे घण्टे तक बेफिक्री से खाने के बाद वह पहलेवाली जगह पर जाकर फिर से सुस्ताने लगी। चीतल का एक बड़ा हिस्सा अब भी वहीं पड़ा था।

तभी वहाँ एक दूसरा बाघ आता दिखा। फुर्तीली की ही तरह जवान, पर कद-काठी में उससे थोड़ा बड़ा।

चीतल की लाश के पास आकर उसने उसे सूँघा। नए बाघ की इस हरकत की खबर जैसे ही फुर्तीली को हुई वह एकदम-से उठी और गुर्राते हुए उस बाघ पर झपटी। बाघ कुछ कदम पीछे हुआ और फिर हलकी गुर्राहट से उसने जवाब दिया। उसकी गुर्राहट में गुस्सा नहीं था। वह फुर्तीली से दोस्ती करना चाहता था। फुर्तीली फिर से लेट गई। बाघ उसके पीछे जाकर दोस्ती की मनुहार करने लगा। थोड़ी देर बाद फुर्तीली उठी और बचे हुए चीतल को फिर से खाने लगी। बाघ फुर्तीली को खाते देखता रहा फिर कुछ देर बाद वह भी खाने लगा। फुर्तीली ने कोई विरोध नहीं किया। उस दिन से वे दोनों साथ-साथ रहने लगे।

बाघ एकाकी जीव होते हैं। ये आजीवन अकेले रहते हैं। परिवार वृद्धि के समय नर-मादा कुछ दिनों के लिए साथ रहते हैं। मादा बच्चों को जन्म देकर उनके बड़ा होने तक उनके साथ रहती है।

दोनों को साथ-साथ रहते एक सप्ताह से ज़्यादा हो गया था। इस बीच फुर्तीली ने एक साँभर का शिकार किया जिसे दोनों ने तीन दिन तक छककर खाया। पूरा साँभर खा लेने के बाद दोनों गुनगुनी धूप में पसरे हुए नींद की खुमारी में थे। हम लोगों ने ऐसे दृश्य काफी शूट कर लिए थे। इसलिए मैंने कैमरा बन्द करने को कहा और मचान पर हम सभी आराम की मुद्रा में थोड़ा इत्मीनान में हो गए। दो पल झपकी लेने के बाद जब मैंने फुर्तीली की ओर निगाह डाली तो सामने का दृश्य देखकर सहसा विश्वास नहीं हुआ। सामने के मैदान में तेन्दुए का एक जोड़ा बेफिक्री से फुर्तीली की ओर बढ़ा चला आ रहा था। मैंने तुरन्त कैमरा चालू करने को कहा। तेन्दुए भी अकेले ही रहते हैं। यह जोड़ा, एकदम जवान था और इनके बीच अभी-अभी दोस्ती हुई लग रही थी।

वे एकदम बेफिक्री से चले आ रहे थे। उन्हें इस बात का एहसास तक न था कि वे दो बाघों के एकदम पास आ गए हैं — इतने पास की यह करीबियत उनके लिए घातक हो सकती है। बाघ अपने इलाके में किसी दूसरे शिकारी जानवर को बर्दाश्त नहीं करते हैं खासकर तेन्दुए को तो बिलकुल नहीं। अचानक फुर्तीली के कानों ने हरकत शुरू कर दी। वो दाएँ-बाएँ, आगे-पीछे होते हुए किसी आवाज़ की टोह लेने लगे। दोनों तेन्दुए भी तभी रुक गए। उन्हें जैसे खतरे का एहसास हो गया था। लेकिन तब तक देर हो चुकी थी। फुर्तीली एक झटके-से उनकी ओर लपकी। सुन्दर भी उठ खड़ा हुआ। तेन्दुओं को इतने बड़े खतरे का एहसास बिलकुल न था। वे घबराए हुए भागे और कुछ फर्लांग दूर पर खड़े इकलौते कीकर के पेड़ पर चढ़ गए। कीकर का पेड़ बहुत ऊँचा नहीं था। न ही उसकी डालियाँ बहुत मज़बूत थीं। फिर भी खुद को सन्तुलित रखते हुए दोनों अलग-अलग डालियों पर सुरक्षित पहुँच गए। उनका मुँह फुर्तीली की ओर था। फुर्तीली और उसका साथी सुन्दर नीचे खड़े उन्हें घूर रहे थे। कुछ देर बाद सुन्दर अपने अगले पैरों को पेड़ के तने से टिकाए पिछले पैरों पर सीधा खड़ा हो गया। नर बाघ वैसे भी ऐसा करते हुए अपने अगले पंजों से पेड़ के तने पर खरोंच के निशान लगाते हैं। यह उनके शक्ति प्रदर्शन का एक तरीका है। सुन्दर की इस हरकत पर तेन्दुओं के जैसे प्राण ही सूख गए। वे शाखों पर कुछ पीछे सरकने लगे। पर आगे शाखें इतनी पतली थीं कि वे हिलने लगीं। दोनों ने किसी तरह से खुद को गिरने से बचाया। फुर्तीली और सुन्दर उसी पेड़ के नीचे लेट गए। लेटी हुई फुर्तीली का पूरा ध्यान और कान उस पेड़ पर ही टिके थे। तेन्दुओं की हलकी-सी हरकत पर वो चौकन्नी हो उठ जाती थी। धीरे-धीरे कई घण्टे बीत गए। तेन्दुओं का अब शाखों पर टिके रहना मुश्किल हो गया था। नर तेन्दुआ थोड़ा नीचे आकर एक कुछ मोटी शाखा पर लेट गया। वह सतर्क था। थोड़ी देर बाद जब मादा भी उसी शाख पर आ गई तो नर उसके लिए जगह छोड़कर खुद नीचे उतर आया। और दूसरी शाख पर लेट गया। वे दोनों बुरी तरह थक चुके थे। पेड़ अगर बड़ा और ऊँचा होता तो उन्हें कोई दिक्कत नहीं होती। ऊँची और मोटी शाखों पर वे अपने चारों पैर नीचे की ओर लटकाकर आराम से पड़े रहते हैं। वे शायद थकान और प्यास से परेशान थे। डरे हुए

चित्रः दिलीप चिंचालकर

भी थे, इसलिए वहाँ से भाग जाना चाहते थे। वे इसकी जुगत भी लगाने लगे थे। फुर्तीली जब भी लेटे-लेटे उन पर गुर्राती तो अब वे भी हलकी गुर्राहट से प्रक्रिया व्यक्त करने लगे थे। जाड़े का सूरज जल्दी डूब जाता है। दोपहर बीते तीन-चार घण्टे बाद ही शाम का माहौल बनने लगा था। इस बीच नर तेन्दुआ उतरने की कोशिश में तने तक आया कि दोनों बाघ उठ खड़े हुए। वो फिर से पेड़ की ऊँचाई पर पहुँच गया।

हम सब के लिए यह अप्रत्याशित था। बहुत थक जाने के बावजूद हम अन्दर से बेहद रोमांचित थे। हालाँकि हम मन ही मन कामना करने लगे थे कि कुछ अप्रिय न घटे। जब नीम अँधेरा पसरने लगा तब मैंने अपने कैमरामैन को सचेत किया कि वह कम रोशनी में काम कर सकनेवाला कैमरा सेट कर लें। मेरा मन उस समय बड़ा विचलित था। अब इतना अँधेरा हो गया था कि नंगी आँखों से केवल तेन्दुओं की हिलती आकृति दिखाई दे रही थी। पूरा जंगल कँपकँपा देनेवाली ठण्ड में दुबक गया था। तेन्दुए के लिए अब एक मौका था। वह तेज़ी-से उतरा और पलक झपकते ही मैदान की ओर भागा। पर फुर्तीली अपने नाम के अनुरूप कुछ ज़्यादा ही फुर्तीली और चौकन्नी निकली। तीन लम्बे छलाँग में वह तेन्दुए के पास पहुँची और अपने अगले पंजे का भरपूर वार उसके सर पर दे मारा। तेन्दुआ डर और घबड़ाहट से काँप रहा था। तभी मादा तेन्दुआ पेड़ से उतरी और उनके उलटी दिशा में भागी। अचानक कुछ दूर भागकर वह रुकी और एक सुरक्षित दूरी बनाकर उन बाघों की ओर दौड़ पड़ी। शायद उन बाघों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कराकर वह अपने साथी को भागने का मौका देना चाहती थी। उसकी इस हरकत से सुन्दर का ध्यान भटका। वह उसकी ओर लपका भी पर फिर नर तेन्दुए की ओर गुर्राता हुआ दौड़ा। तेन्दुए ने बचाव की मुद्रा में गुर्राते हुए अपना पंजा आगे कर दिया। फुर्तीली को मौका मिल गया। उसने पीछे से उसकी कमर पर तेज़ पंजा मारा। तेन्दुआ गुर्राते हुआ घूमा तो सुन्दर ने उसकी गर्दन का ऊपरी हिस्सा अपने मुँह से पकड़ लिया। तेन्दुआ बेदम हो चुका था फिर भी छटपटाए जा रहा था। छटपटाते हुए वह एकदम-से पलट गया। इससे वह बाघ के दाँतों से छूट गया पर दो कदम भागते ही वह गिर पड़ा। फुर्तीली ने फिर से एक पंजा उसकी पीठ पर मारा। तेज़ दर्द भरी चीख के साथ तेन्दुआ वहीं गिर पड़ा। बिना किसी हरकत के। वह बस हाँफ रहा था। सुन्दर ने आगे बढ़कर फिर-से उसकी गर्दन पकड़ ली। तेन्दुए ने अब कोई हरकत न की। वह शान्त पड़ा था। मादा तेन्दुआ कब की ओझल हो चुकी थी। दोनों बाघ वहीं बैठकर सुस्ताने लगे। जब आसमान में चाँद की हलकी रोशनी छिटकी तो वे अलसाए से उठे और साथ-साथ चल दिए...

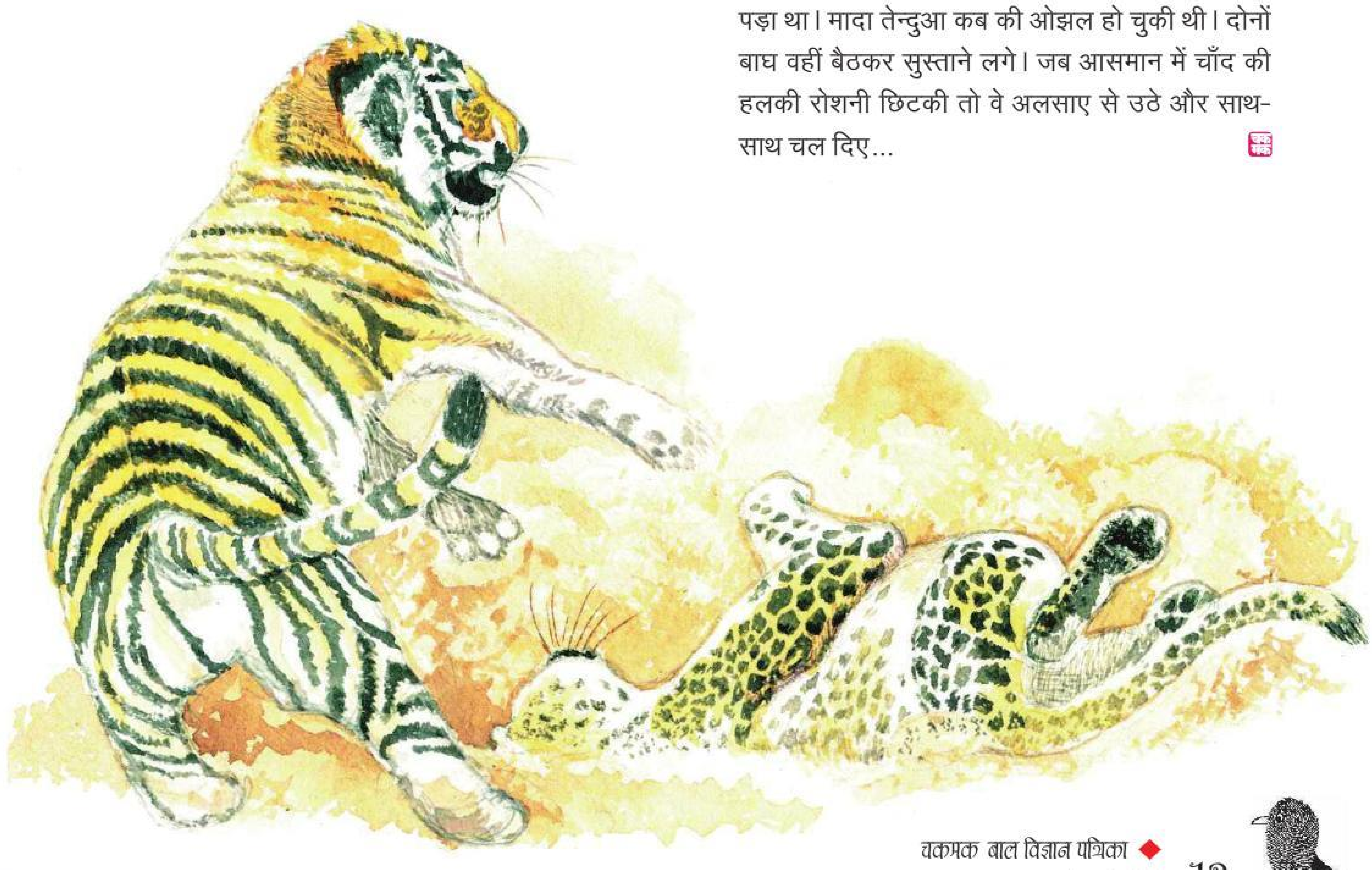

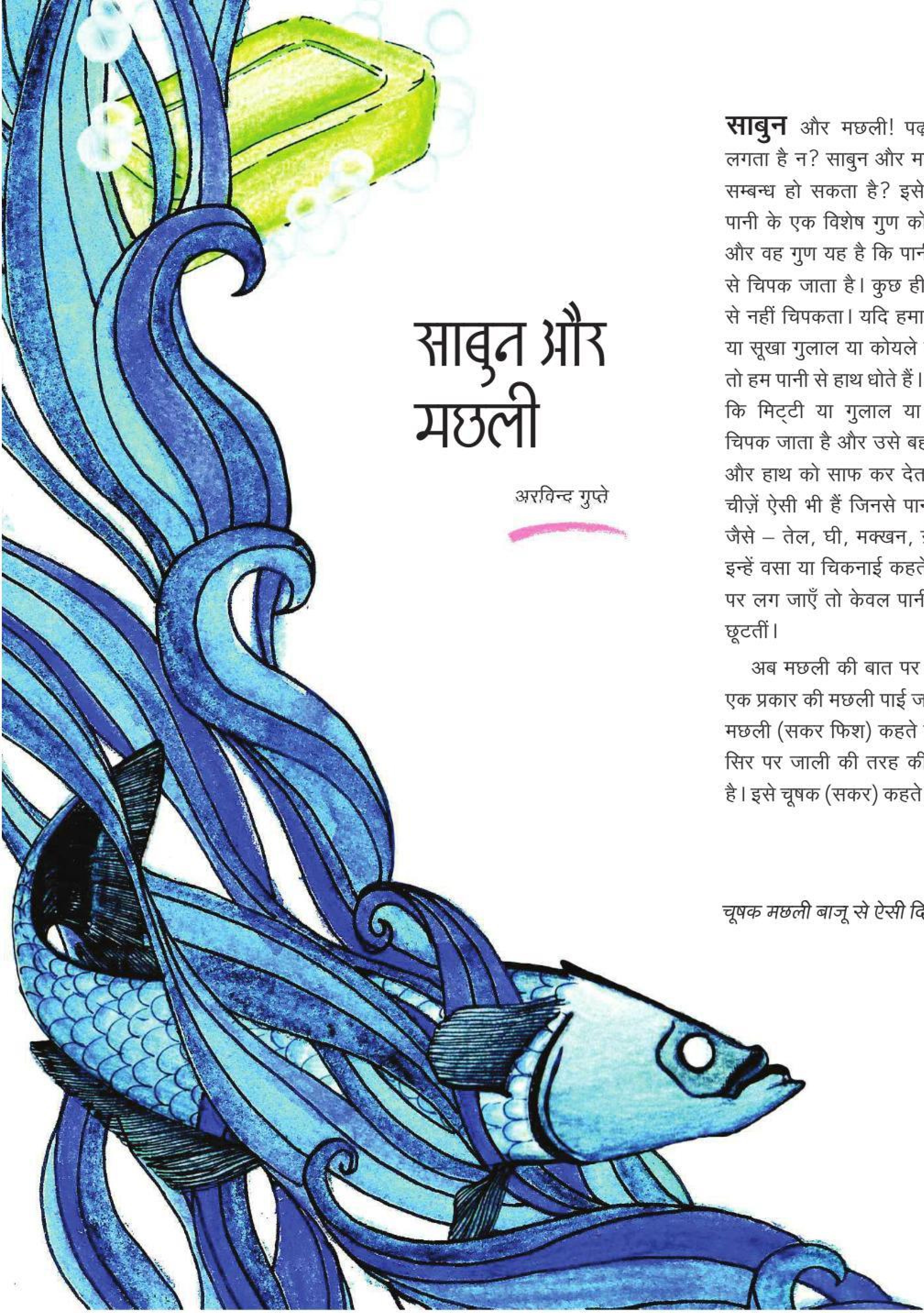

साबुन और मछली

अरविन्द गुप्ते

साबुन और मछली! पढ़कर कुछ अजीब लगता है न? साबुन और मछली में भला क्या सम्बन्ध हो सकता है? इसे समझने के लिए पानी के एक विशेष गुण को समझना पड़ेगा। और वह गुण यह है कि पानी अधिकांश चीज़ों से चिपक जाता है। कुछ ही गिनी-चुनी चीज़ों से नहीं चिपकता। यदि हमारे हाथ पर मिट्टी या सूखा गुलाल या कोयले का चूरा लग जाए तो हम पानी से हाथ धोते हैं। इससे होता यह है कि मिट्टी या गुलाल या कोयले से पानी चिपक जाता है और उसे बहाकर ले जाता है। और हाथ को साफ कर देता है। लेकिन कुछ चीज़ें ऐसी भी हैं जिनसे पानी नहीं चिपकता। जैसे – तेल, घी, मक्खन, ग्रीज़, मोम आदि। इन्हें वसा या चिकनाई कहते हैं। ये चीज़ें हाथ पर लग जाएँ तो केवल पानी से धोने पर नहीं छूटतीं।

अब मछली की बात पर आते हैं। समुद्र में एक प्रकार की मछली पाई जाती है जिसे चूषक मछली (सकर फिश) कहते हैं। इस मछली के सिर पर जाली की तरह की एक रचना होती है। इसे चूषक (सकर) कहते हैं।

चूषक मछली बाजू से ऐसी दिखती है

चित्रः नर्गिस शेख

इस चूषक की सहायता से यह मछली पानी में रहनेवाले बड़े जीवों जैसे शार्क या व्हेल के शरीर पर चिपक जाती है। लेकिन यह उन्हें कोई नुकसान नहीं पहुँचाती। यह तो एक जगह से दूसरी जगह पर जाने के लिए बिना पैसे की सवारी के रूप में इन बड़े जीवों का उपयोग करती है। साथ ही, इनके मुँह से गिरनेवाले भोजन के टुकड़ों से अपना पेट भी भर लेती है।

समुद्र में मछली पकड़नेवाले मछुआरे कछुए पकड़ने के लिए चूषक मछलियों को पालते हैं। कछुआ नज़र आते ही वे इन पालतू मछलियों की पूँछ पर एक मज़बूत रस्सी बाँधकर उन्हें समुद्र में छोड़ देते हैं। मछली सीधे जाकर कछुए की पीठ पर मज़बूती के साथ चिपक जाती है। फिर मछुआरा जब चूषक मछली की पूँछ से बँधी रस्सी को खींचता है तो मछली और कछुआ दोनों खिंचे चले आते हैं।

अब बात साबुन की। हमने देखा कि चिकनाईवाले पदार्थों से पानी नहीं चिपकता और उनसे पिण्ड छुड़ाना मुश्किल होता है। लेकिन साबुन एक ऐसा पदार्थ है जो चिकनाई से भी चिपकता है और पानी से भी। इसीलिए हम चिकनाई पर साबुन लगाते हैं तो साबुन उससे चिपक जाता है और फिर पानी से धोने पर साबुन पानी से चिपककर निकल जाता है। वह अपने साथ चिकनाई को भी ले जाता है। तो चिकनाई हुई कछुआ और साबुन हुआ चूषक मछली।

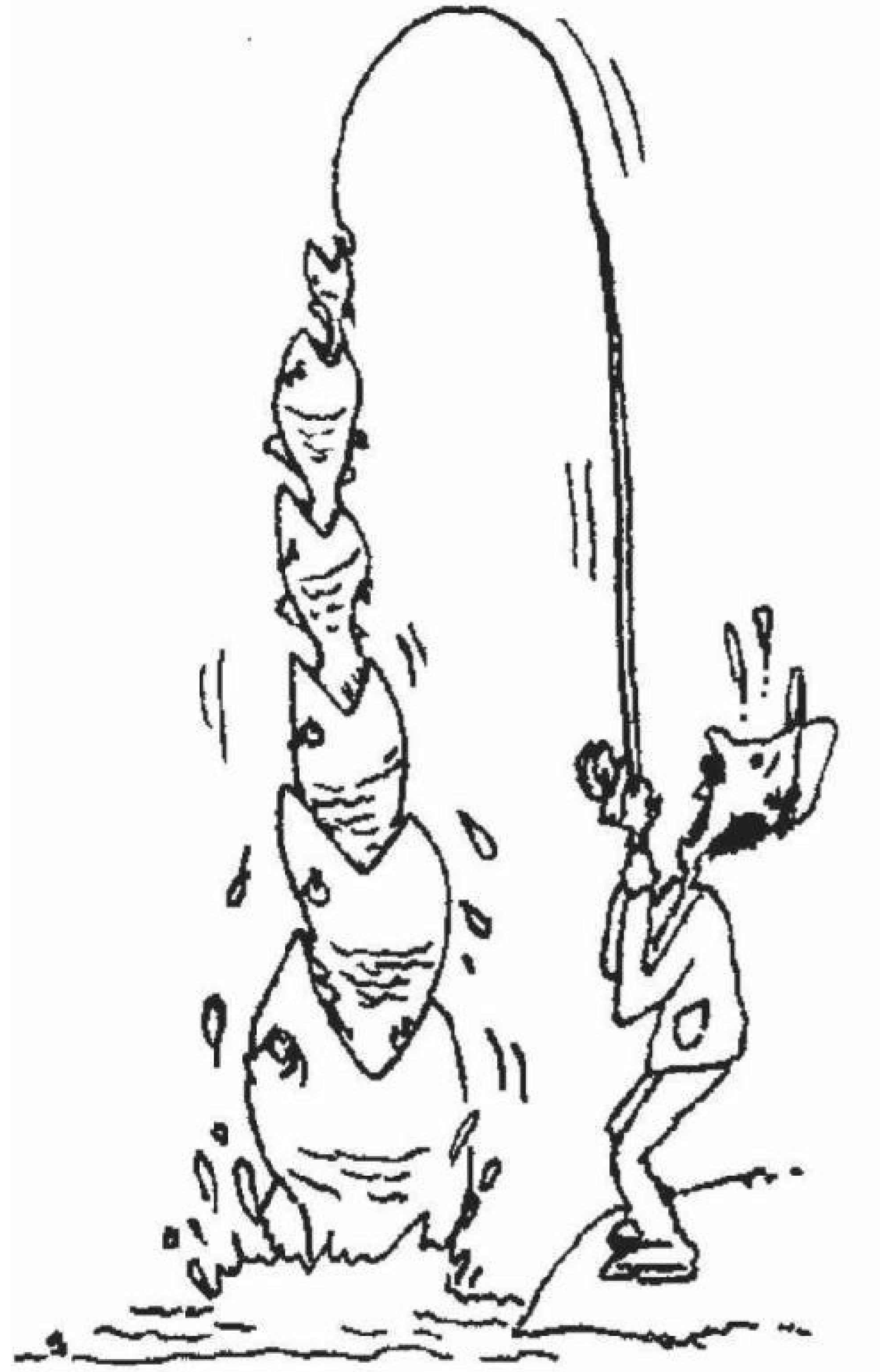

चित्रः अतनु राय

फॉर्म-4 (नियम-8 देखिए)

मासिक चकमक बाल विज्ञान पत्रिका के स्वामित्व और अन्य तथ्यों के सम्बन्ध में जानकारी

प्रकाशन का स्थान : भोपाल
प्रकाशन की अवधि : मासिक
प्रकाशक का नाम : सी. एन. सुब्रह्मण्यम्
राष्ट्रीयता : भारतीय
पता : एकलव्य
ई-10 शंकर नगर, बी.डी.ए. कॉलोनी, शिवाजी नगर
भोपाल 462 016

मुद्रक का नाम : सी. एन. सुब्रह्मण्यम्
राष्ट्रीयता : भारतीय
पता : एकलव्य
ई-10 शंकर नगर, बी.डी.ए. कॉलोनी, शिवाजी नगर
भोपाल 462 016

सम्पादक का नाम : सुशील शुक्ल
राष्ट्रीयता : भारतीय
पता : एकलव्य
ई-10 शंकर नगर,
बी.डी.ए. कालोनी, शिवाजी नगर
भोपाल 462 016

उन व्यक्तियों के नाम, राष्ट्रीयता और पते जिनका इस पत्रिका पर स्वामित्व है : रैक्स डी. रोज़ारियो
: भारतीय
: एकलव्य
ई-10 शंकर नगर, बी.डी.ए. कॉलोनी,
शिवाजी नगर , भोपाल 462 016

मैं सी. एन. सुब्रह्मण्यम् यह घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)
सी. एन. सुब्रह्मण्यम्

20 मार्च 2014

– मिताली जैन, पहली, डीपीएस स्कूल, लुधियाना, पंजाब

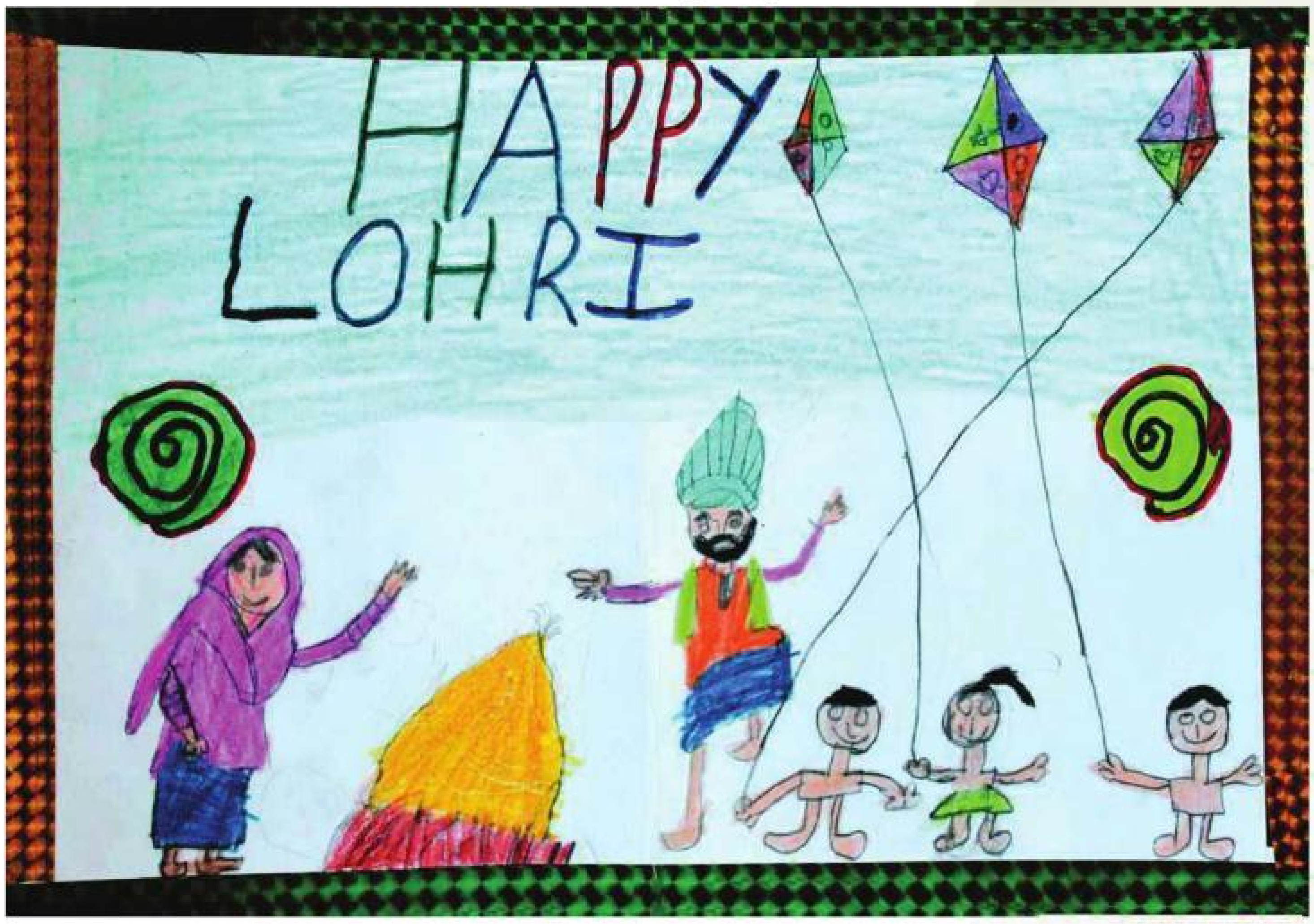

हमारा लोहड़ी का त्यौहार

है लोहड़ी खुशियों का त्यौहार
करते हैं सभी इसका बेसबरी से इन्तज़ार
आए चाचा, चाची, मामी और मामा
हैं लाए साथ खुशियों का खज़ाना
रेवड़ी गजक लेकर सबके घर है जाना
लोहड़ी माँगकर कुछ पैसे भी तो है कमाना।
नीले गगन में उड़ी रंग-बिरंगी पतंगें
है दिल में दूसरों की
पतंग काटने की उमंगें
मन करता है चर्खी लेकर लाल-पीली
पतंग उड़ाऊँ
मन करता है पतंग की तरह मैं भी ऊँचाईयों
को छूती ही जाऊँ
साँझ होने पर गली-गली में जला दिए उपले
और लकड़ी के गठ्ठे
धूनी के पास सभी बैठकर
हाँक रहे हैं गप्पें

–सिफत कौर, चौथी,
डी.पी.एस लुधियाना

मेरापन्ना

पानी

बादल से बने पानी
बूँद-बूँद गिरे धरती में पानी
समुद्र में लहराए पानी
तालाब भरे पानी से
घास उगे पानी से
चारों तरफ हो हरियाली
बादल से बने पानी

– पोलिना मुर्मु,
गिरिडीह, झारखण्ड महिला
समाख्या सोसाइटी,
झारखण्ड

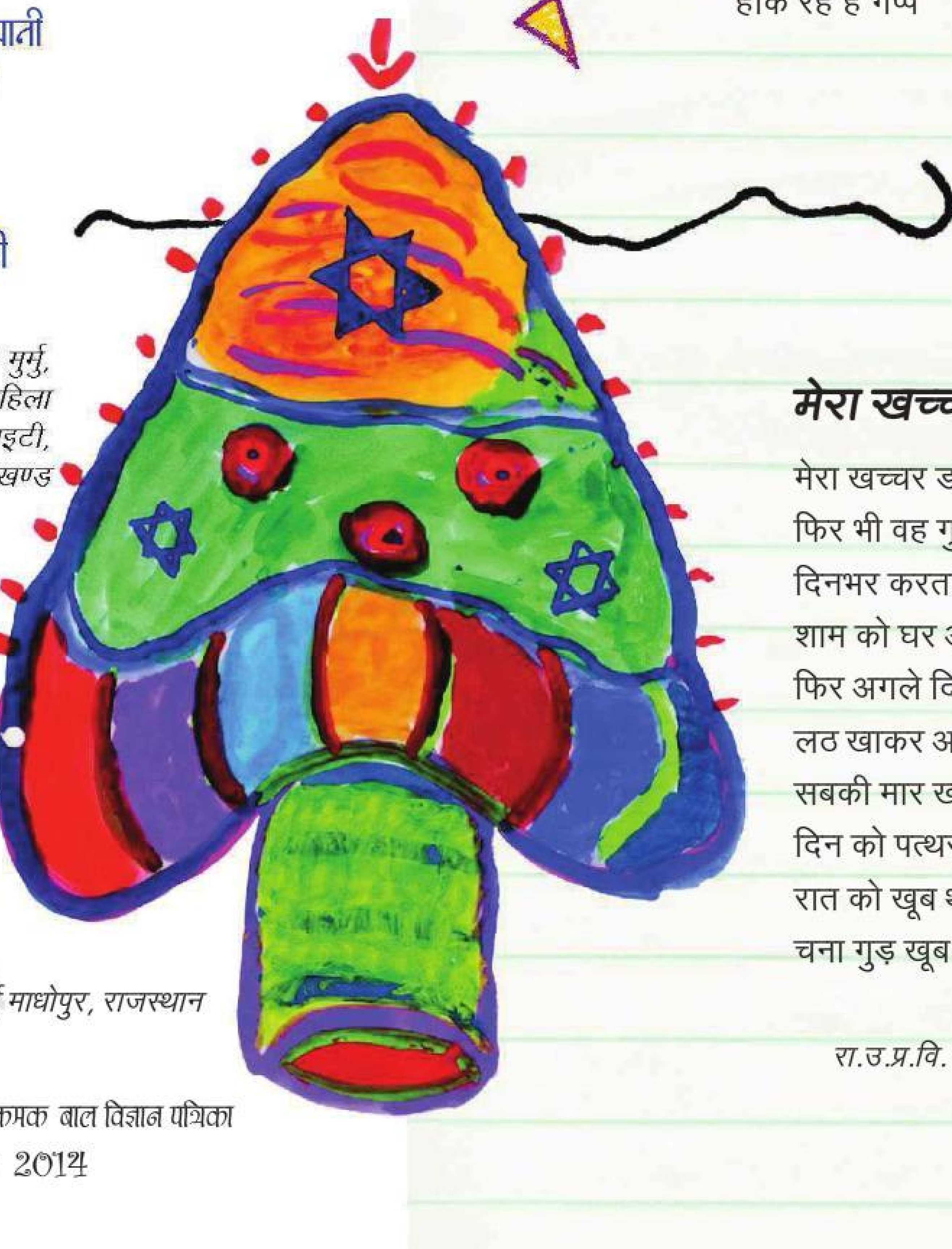

–मानसिंह, सवाई माधोपुर, राजस्थान

मेरा खच्चर डण्डा है

मेरा खच्चर डण्डा है
फिर भी वह गुण्डा है।
दिनभर करता रहता मस्ती
शाम को घर आ जाता जल्दी।
फिर अगले दिन जाता खेतों में
लठ खाकर आ जाता है।
सबकी मार खाता है
दिन को पत्थर डालता है।
रात को खूब थक जाता है
चना गुड़ खूब खाता है।

– यशवीर सिंह, सातवीं,
रा.उ.प्र.वि. डेरका पुरोला,उत्तरकाशी

मेरी अपनी कहानी

मेरा नाम रवि है। मेरे पिता शराब के आदी हैं जिसकी वजह से घर में तंगी रहती है। दो वक्त की रोटी खाने के भी लाले पड़ जाते हैं। माँ बीमार रहती हैं। इसकी वजह से मुझे अपनी पढ़ाई छोड़नी पड़ी। मैं काम की तलाश में इधर-उधर भटकता रहा पर काम नहीं मिला। फिर कुछ समय बाद मुझे एक जगह काम मिला। मैंने उनसे पैसे के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा महीने के 500 रुपए मिलेंगे। मैंने उनसे इस बारे में कुछ नहीं कहा इस डर से कि कहीं वो मुझे निकाल ना दें। वह मुझसे रोज़ बर्तन-कपड़े धुलवाते थे। और रात में पैर दबवाते थे। और मैं रात के साढ़े ग्यारह बजे अपने घर पहुँचता था। जब मैं धीरे-धीरे काम करता तो वो मुझे बैल्ट से पीटते। महीना पूरा होने पर उन्होंने मुझे सिर्फ 250 रुपए दिए। मेरी माँ की तबीयत और खराब हो गई थी। मुझे समझ नहीं आया कि मैं खाना खरीदूँ या माँ की दवाई। ज़्यादा तबीयत खराब होने से कुछ दिनों में माँ की मौत हो गई। उसके कुछ समय बाद शायद पिता को अपनी गलतियों का एहसास हुआ और उन्होंने शराब छोड़ दी। फिर मेरे पिता कमाने लगे और मैं स्कूल जाने लगा।

—प्रांशु साहू, सातवीं, के के अकेडमी लखनऊ, उ. प्र.

—हिमिका शाह, शिशुवन स्कूल, मुम्बई, महाराष्ट्र

चाँद कीचड़ में

एक दिन मैं रात में चाँद को देख रही थी। तभी मैंने देखा कि चाँद का रंग कुछ अजीब-सा था। तो मैंने सोचा कि हो सकता है चाँद कीचड़ में गिर गया हो। तभी मेरे मन में एक ख्याल आया कि क्यों ना एक कहानी बनाई जाए।

मैंने कहानी का नाम चाँद कीचड़ में रखा।

एक दिन चाँद खेल रहा था। तभी उसका पैर फिसल गया और वह कीचड़ में गिर गया। घर पर माँ ने उसे बहुत डाँटा। बोलीं, "कहाँ थे अब तक? और इतने गन्दे कैसे हो गए!"

चाँद बोला, "मैं खेल रहा था, पैर फिसल गया और मैं कीचड़ में गिर गया। पर चिन्ता मत करो। साफ हो जाऊँगा।"

माँ ने उसके कपड़े साफ कर दिए और मुस्कराकर बोलीं, "नहा लो।"

चाँद खुशी-खुशी नहाकर खेलने चला गया।

—मेहा शर्मा पाठक,
तीसरी, जयपुर, राजस्थान

—नील, 6 वर्ष, सवाई माधोपुर, राजस्थान

सयानी

रमेश बिल्लोरे "यायावर"

पौष आते ही कड़ाके की ठण्ड शुरू हो गई थी। उस दिन सुबह हम छत पर गए तो देखा गिलहरी के दो बच्चे बेहोश पड़े थे। विजया ने उन्हें बोरी पर धूप में रख दिया। थोड़ी देर बाद गर्मी पाकर उनमें चेतना आई तो वे हिलने-डुलने लगे। फिर वे आँखें खोल हैरानी से आसपास की दुनिया को टुकुर-टुकुर देखने लगे। शायद उनकी माँ छत पर बने कबाड़घर में ही रहती थी। मगर उसका कहीं अता-पता नहीं था। बच्चों को इस हाल में छोड़कर पता नहीं वह कहाँ गई थी! विजया ने चील-कौओं से बचाने के लिए उन्हें टोकरी से ढँक दिया। फिर वह उन्हें मेरे सुपुर्द कर चली गई।

कुछ समय बाद मैंने टोकरी हटा दी ताकि नन्ही गिलहरियाँ धूप का मज़ा ले सकें। उनमें से एक, जो थोड़ी चंचल थी, इधर-उधर दौड़ने लगी और फिर जो गायब हुई तो पता ही न चला वह गई किधर। दूसरी, जो थोड़ी कमज़ोर थी, वहीं आसपास घूमने लगी और फिर पानी की नली में घुस गई। थोड़ी देर बाद वह नली के बाहरी सिरे से सिर निकाल नीचे की दुनिया को देखने लगी थी। मुझे ही नहीं, उस नन्हे जीव को भी समझ में आ गया था कि वह खतरनाक स्थिति में पहुँच गई थी। अगर वह आगे बढ़ी तो नीचे आ गिरेगी। मैंने टोकरी के दोनों सिरों को सुतली से बाँधकर उसे नीचे लटका दिया। इसी बीच नन्ही गिलहरी किसी तरह बाहर निकलकर नली के ऊपर बैठ गई थी। टोकरी पास लाते ही वह कूदकर उसमें आ गई। मैंने तुरन्त रस्सी खींच ली। घर के बुद्धू घर को आ गए थे! इस सफल बचाव अभियान के बाद नली को ईंट से ढँक दिया गया था। शुक्र है कि विजया को इस नाटकीय घटना क्रम के बारे में कुछ पता नहीं था। लेकिन जब वह नन्ही गिलहरियों की खोज-खबर लेने आई तो यह जानकर नाराज़ हुई कि मेरी लापरवाही से उनमें से एक लापता हो गई थी। पता नहीं अब वह कहाँ किस हाल में होगी?

अब हमारी चिन्ता दूसरी नन्ही गिलहरी को लेकर थी। अभी वह अनाज नहीं खा सकती थी। हमने उसे चिउरा, मुरमुरा दिया पर उसने उसमें कोई रुचि नहीं दिखलाई और न ही अमरूद खाया। समझ में नहीं आया कि उसे क्या खिलाया जाए। शाम होने पर उसे बोरी पर लिटा, कपड़ा ओढ़ाकर टोकरी से ढँक दिया गया। रात को दिल्ली फोन कर रत्ना को यह समस्या बताई तो उसने इस नन्हे जीव को दूध पिलाने की सलाह दी।

दूसरे दिन सूरज के उगते ही हमने नन्ही गिलहरी को धूप में खुला छोड़ दिया। उसे नाम दिया गया "सयानी"। कटोरी में दूध देने पर उसने नहीं पिया तो विजया ने उसे ड्रॉपर से पिलाने की कोशिश की मगर असफल रही। वह मुँह से या नाक से दूध बाहर निकाल देती। उसे अमरूद, सेब व केले के टुकड़े दिए मगर उसने ज़रा नहीं खाया। मैंने विजया से कहा, "तुम्हारी यह लाड़ली सयानी नहीं, ज़िद्दी है। इसे तो ज़िद्दनबाई कहना चाहिए।" सयानी के साथ ही हमने दोपहर गुज़ार दी। वह आवाज़ करती हुई इधर-उधर घूमने लगी। शायद अपनी माँ को पुकार रही थी। मगर उसकी माँ का कहीं अता-पता न था। शाम हो चली थी। तभी जाने कहाँ से उसकी माँ प्रकट हुई। सयानी सहज बुद्धि से आभास पाकर उसकी ओर दौड़ी। यह देख हम खुश हुए मगर आश्चर्य! उसके पास पहुँचने से पहले ही उसकी माँ भागकर गायब हो गई थी। माँ-बेटी के मिलन के दृश्य की हमारी कल्पना साकार नहीं हुई। हमें दुख हुआ मगर क्या किया जा सकता था! हम देर तक उसकी माँ के लौटने का इन्तज़ार करते रहे पर वह नहीं आई। आखिर हमने उस नन्ही जान को टाट पर सुला, कपड़ा ओढ़ाकर टोकरी से ढँक दिया।

रात देर तक हमें सयानी की चिन्ता सताती रही। उसने दो दिन से कुछ खाया नहीं था। वह कमज़ोर हो चली थी। बिना खाए-पिए वह कैसे ज़िन्दा रहेगी? हमने तय किया कि अगले दिन उसे दूध में शहद मिलाकर देंगे। साथ ही टमाटर, पालक और मूँग दाल का सूप व भात माड़ आज़माने का भी सोचा। गिलहरी के बारे में हमारा अज्ञान ज़ाहिर था। यह भी समझ में आया कि किसी जीव की परवरिश के लिए संवेदनशील होना ही काफी नहीं, उसके खान-पान के बारे में भी पता होना चाहिए। हमारे पास जो किताबें थीं उनसे हमें कोई मदद न मिली। तभी याद आए हमारे वैज्ञानिक मित्र। उनसे दुनिया की किसी भी समस्या पर सलाह ली जा सकती है। तय हुआ कि अगली सुबह ही होशंगाबाद फोन कर उनसे इस सम्बन्ध में जानकारी ली जाए।

अगले दिन सुबह नींद खुलते ही हम सयानी को देखने गए। सूरज निकल आया था। "यह आलसी जाग गई या सोयी है अभी भी।" कहते हुए विजया ने टोकरी उठाकर उसे ओढ़ाया कपड़ा हटाया तो देखा कि वो बेहोश पड़ी थी। उसे उठाकर तुरन्त धूप में रखा। हिलाया-डुलाया। मगर यह क्या? वह तो बेजान थी। हाथ-पाँव अकड़े हुए। हमें यह समझने में थोड़ा समय लगा कि सयानी चिर-निद्रा में लीन है। अब नहीं उठेगी। उन दिनों 21 दिसम्बर 2012 को दुनिया का अन्त होने की भविष्यवाणी की चर्चा थी। खैर, वो तो हुआ नहीं। मगर इसी दिन उस नन्ही गिलहरी की दुनिया का अन्त हो गया। दो दिन की ही ज़िन्दगानी थी उसकी। हमारे घर के आँगन में ही अमरूद की छाया में गड्ढा खोदकर उसे सुला दिया। गड्ढे को मिट्टी से भर उस पर गेंदे की पँखुरियाँ बिखेर उससे विदा ली। उस दिन हमसे कुछ खाया नहीं गया। खालीपन से भरा उदास दिन। शाम को जब सयानी का ज़िक्र आया तो विजया रोने लगी। मैंने कहा, "अब रोने से क्या होगा? हमसे जो हो सकता था हमने किया।" मगर मन में कहीं अपराधबोध भी था। कहीं हमारे हस्तक्षेप के कारण ही तो सयानी की माँ ने उसे अकेला छोड़ दिया! बहरहाल, हमें इस दुख से उबरने में काफी वक्त लगा।

कुछ दिन बाद ही दूसरी नन्ही गिलहरी नज़र आई, शायद वही जो लापता हो गई थी। उसके साथ उसकी माँ भी थी। घर फिर आबाद हुआ। अब माँ-बेटी अकसर छत पर दिख जातीं। वे पक्षियों के लिए बिखेरे चावल भी खाने लगी थीं। यह देख हम खुश हुए। पर हमारी खुशी थोड़े समय ही रही। एक दिन देखा वह नन्ही गिलहरी छत पर बेजान पड़ी थी। पता नहीं यह कब और कैसे हुआ! वह अच्छी-भली अपनी माँ के साथ घूमती-फिरती थी। फिर

चित्र : दिलीप चिंचालकर

क्या हुआ कुछ समझ में नहीं आया! जो भी हो, उसे सयानी के पास ही दफना दिया।

इस कहानी को यहीं खत्म हो जाना था, मगर ऐसा हुआ नहीं। चमत्कार में मेरा विश्वास नहीं है पर जो हुआ उसे क्या कहा जाए? दो दिन बाद ही छत पर अचानक प्रकट हुई सयानी जैसी नन्ही गिलहरी – चतुर चपल, निडर! वह घूमने लगी इधर-उधर। उसे देख सुखद आश्चर्य हुआ। यह कहाँ से आ गई? क्या यह गिलहरी की तीसरी सन्तान थी? अगर ऐसा था तो इतने दिन कहाँ गायब थी?

जो भी हो, हमारी खुशी की सीमा न रही। वह सुबह जागते ही चली आती और पिछले पैरों पर बैठ, अगले पैरों (या हाथों?) पर ठोड़ी टिकाए दाने खाती। दोपहर में जब विजया छत पर लेटे हुए धूप सेंकती हुई पढ़ती, तो वह बिना डर के चली आती और उसके आसपास घूमती रहती। वह उसे खाने के लिए जो भी देती – अमरूद, सेब या आँवले के टुकड़े वह सब चट कर जाती। फिर कुण्डे में रखा पानी पीती।

अब उसकी माँ दिखाई नहीं देती मगर सयानी (हमने उसे भी यही नाम दिया) अकसर यहाँ-वहाँ घूमती दिख जाती है। सुबह-शाम गौरैया, मैना, सातभाई, फुदकी, कबूतर व फाख्ता दाना चुगने व पानी पीने आते हैं। तब हमारी गिल्लो रानी भी वहाँ होती है। वह मैना के आक्रामक तेवर से नहीं डरती है। सीधी-सादी फाख्ता की तरफ दौड़कर उसे भगाने की कोशिश करती है। वैसे गौरैया के बच्चों से उसकी दोस्ती है। कभी वह छत से सीढ़ियाँ उतरकर बरामदे से होती हुई घर के बाहर चली जाती है या बाहर से घर में आकर सीढ़ियों से ऊपर चली जाती है। कभी रसोईघर में चली आती है। आँगन में वह यूँ ही घूमती रहती है। कभी चारदीवारी पर दौड़ती नज़र आती है या आम पर चढ़ती-उतरती रहती है। किसी दिन दिखाई न दे तो चिन्ता होने लगती है।

अब सयानी को एक साथी भी मिल गया है। उसी के साथ दौड़ती, खेलती है। वो दोनों अमरूद की डाल पर बैठ पके-मीठे फल कुतर-कुतरकर खाते हैं।

हमें लगता है हमारी सयानी लौट आई है। उसने हमारे खालीपन को भर दिया है। उसके साथ ही लौट आई है हमारी खुशियाँ और घर-आँगन की रौनक भी। जीवन में इससे ज़्यादा और क्या चाहिए?

मेरापन्ना

सोहेल की पीली चड्डी

हाट बाज़ार लग रहा था। मैंने जल्दी-जल्दी पानी की कुप्पी भरी। और दुकानों में बेचने निकल गया। छह बजे तक मैंने मच्छीवालों की लाइन में पानी का काम खत्म कर दिया। घर जाने लगा तो देखा आज तो कपड़ों की नई दुकानें लगी हैं। त्यौहार आ रहा था तो बाज़ार में अलग ही चमक थी।

एक ठेलेवाला लोगों को बनियान दिखा रहा था। ग्राहक भाव-तोल कर रहे थे। तभी मेरे हाथ में एक चड्डी आ गई। पीले रंग की चड्डी। ठेलेवाले अंकल को मालूम ही नहीं हुआ।

चड्डी लेकर भागा वहाँ से। घर जाकर चड्डी पहनकर देखा तो ऐई... यह तो मेरे लिए बड़ी है।

फिर क्या... मैंने अपने दोस्त को चड्डी बेच दी... बीस रुपए में। पाँच रुपए मैंने रख लिए और बाकी पैसे माँ को दे दिए। पानी बेचा था तो उसके दस रुपए भी दे दिए। माँ को बोला कि मेरे लिए चड्डी ला देना, पीले रंग की चड्डी। स्कूल में सब चिढ़ाते हैं, बोलते हैं बिना चड्डी के आया है। हँसते हैं।

—समीर अगरिया, बापू नगर बस्ती, भोपाल, म. प्र.

—तरुष शाश्वती, पाँच वर्ष,रायपुर. छत्तीसगढ़

शैतान फुग्गा

एक दिन एक लड़की ने फुग्गा खरीदा। घर आकर उसने उस फुग्गे को फुलाया। जैसे ही उसने फुग्गे में गठान बाँधी और उसको छोड़ा तो वह फुग्गा शैतानी करने लगा। जल्दी से छूटकर लड़की के हाथों से दूर चला गया। यह देखकर लड़की रोने लगी तो फुग्गा भी रोने लगा। लड़की चुप तो फुग्गा चुप। लड़की बैठती तो फुग्गा बैठता। लड़की खड़ी तो फुग्गा खड़ा। लड़की दौड़ती तो फुग्गा दौड़ता। वह लड़की की नकल करता। थोड़ी देर में लड़की बहुत परेशान हो गई।

फिर लड़की सोचने लगी क्या करूँ। फिर वह दौड़ते हुए घर से बाहर भाग गई। जैसा उसने सोचा था फुग्गा भी दौड़ते-दौड़ते घर से बाहर भाग गया। पास ही एक पेड़ था। फुग्गा उसमें उलझ गया। अगली सुबह जब लड़की ने जाकर देखा तो वह फुग्गा एक समझदार चमगादड़ बन गया। लड़की उसे देखकर अब बहुत खुश थी।

—शिवानी, आठ वर्ष, जबलपुर, म. प्र.

—श्रेय भगनानी, संस्कार वैली स्कूल, भोपाल, म. प्र

जहाँ तक मुर्गे की बाँग सुनाई दे, वहाँ तक की ज़मीन जमोरिन को दे दी गई।

मुर्गे का किला

इब्बार रब्बी

असुरों का राजा बलि बहुत प्रतापी और दानी था। उसे हराने के लिए देवताओं ने छल का सहारा लिया था। विष्णु ने अपना शरीर बौने जैसा ठिगना बना लिया। वे ब्राह्मण याचक बनकर राजा के पास गए और तीन पाँव बराबर भूमि माँगी। राजा ने कहा, "हे! ब्राह्मण तुम तीन चरण भूमि नाप लो।" भूमि नापने के लिए छली विष्णु ने अपना शरीर खूब बढ़ा लिया। उनके एक कदम में ही पूरी पृथ्वी आ गई, दूसरे कदम में सारा आकाश। इस तरह राजा बलि के सारे राज्य पर देवताओं का कब्ज़ा हो गया। विष्णु के इस रूप को वामन अवतार कहते हैं। वामन यानी बौना। इसी तरह की एक लोककथा केरल में भी प्रचलित है। वहाँ राजा, शासक या सरदार को जमोरिन कहते हैं। कथा के अनुसार जहाँ तक मुर्गे की बाँग सुनाई दे, वहाँ तक की ज़मीन जमोरिन को दे दी गई। पुराणों में तीन कदम पृथ्वी दी गई थी, यहाँ मुर्गे की बाँग को पैमाना बनाया गया।

मलयालम में पक्षी को "कोली" कहते हैं। खाली स्थान या कोने को "कोट्टू" यही कोट्टू कोट्टा में बदल गया। यही शब्द हिन्दी में "कोट" और "किला" है। पंजाब में बसे "फरीद कोट" का अर्थ है "फरीद का किला" या स्थान। उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ शहर में किले के खण्डहर पर बसे टीले को "ऊपर कोट" कहते हैं अर्थात "किले के ऊपर।" बुलन्दशहर में ऐसा स्थान "कोट" कहलाता है। गुजरात का "राजकोट" प्रसिद्ध नगर है। राजस्थान के "कोटा, बूँदी" में भी यह शब्द सुरक्षित है। "कोट" ही का अमला रूप "कोटला" हो गया। दिल्ली के "कोटला फिरोज़शाह" में तुगलक सुलतान फिरोज़शाह के महल थे। "कोटला मुबारकपुर" में पुरानी इमारतें हैं। पड़पड़गंज के पास "कोटला" गाँव है। दक्षिण में "कोट्टायम" नामक स्थान है।

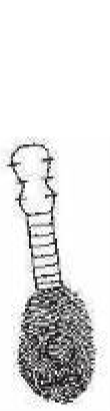

चित्रः दिलीप चिंचालकर

मलयालम में जमोरिन को मिली भूमि का नाम "मुर्गे का कोना" पड़ गया। इसे लोग "कोली कोडु" कहने लगे, जिसका अर्थ है "मुर्गे का किला।" केरल में समुद्र के किनारे बसा यह स्थान मध्यकाल में मलाबार का प्रमुख नगर और बन्दरगाह था। यहाँ जमोरिन रहता था। सारी दुनिया के व्यापारी यहाँ आते-जाते थे। इसकी गिनती दुनिया के बड़े बन्दरगाह के रूप में होती थी।

"कोली कोडु" शब्द को अरब के लोग सही नहीं बोल पाते थे। दिल्ली में जब मुहम्मद तुगलक सुलतान था, उन दिनों अफ्रीका से अरब यात्री इब्न बतूता भारत आया। सुलतान ने उसे दिल्ली का काज़ी बना दिया फिर उसे अपना राजदूत बनाकर चीन भेजा। उसने दक्षिण भारत की यात्रा की। उसने "कोली कोडु" को "कालीकुट" लिखा है। सन् 1343 में इब्न बतूता ने लिखा "फन्दराना से हम कालीकुट" को चले। यह मलीबार (मलाबार) के मुख्य बन्दरगाहों में से एक है। चिन (चीन) जावा, सेलान (श्रीलंका) महाल (मालदीव) यमन और फार्स (ईरान) के लोग यहाँ ज़्यादा तादाद में रहते हैं। विभिन्न इलाकों के सौदागर यहाँ मिलते हैं। यहाँ का बन्दरगाह दुनिया के सबसे बड़े बन्दरगाहों में से एक है।

मध्यकाल में ही कोलीकोडु का नाम बिगड़कर कालीकुट हो गया। इब्न बतूता के सौ साल बाद एक अन्य अरब यात्री अर्ब्दुरज्जाक ने सन् 1442 में लिखा – "यहाँ का बन्दरगाह पूरी तरह सुरक्षित है। ओरमुज की तरह यहाँ हर शहर और हर मुल्क के सौदागर आते हैं।" रूसी यात्री निकितिन ने दक्षिण भारत की यात्रा की थी। उसने सन् 1475 में अपने यात्रा वृतान्त में लिखा – ये सारे भारतीय समुद्र का बन्दरगाह है। यहाँ काली मिर्च, अदरक, रंगों के पौधे, अँगूर, जायफल, लौंग, दालचीनी, सुगन्धित जड़ी-बूटियाँ और सौंठ पैदा होते हैं। यहाँ हर चीज़ सस्ती है। यहाँ के सेवक और सेविकाएँ बहुत अच्छे हैं। यूरोप के लिए भारत का समुद्री मार्ग खोजनेवाले पुर्तगाली नाविक वास्को डि गामा ने उसे "क्युएलीकट" लिखा है।

मलयाली शब्द "कोलीकोडु" अरबी फाराती में "कालीकुट" और पुर्तगाली में क्युएलीकट हो गया। बाद में यही अँग्रेज़ी में "कालीकट" कहलाने लगा। इस तरह मुर्गे का कोना ने किला बनकर कालीकट तक की यात्रा की, पर यह क्रम यहीं नहीं रुका। कालीकट में बननेवाले कपड़े को "कैलिको" यानी कालीकट का कपड़ा कहते थे।

लेख और फोटोः *जितेन्द्र भाटिया*

यात्रा एक अनोखे पक्षी द्वीप की!

हिन्द महासागर में 115 टापुओं का एक खूबसूरत द्वीप समूह है सेशेल्स। यह अपने सुन्दर समुद्री तटों के लिए विख्यात है। इस द्वीप समूह की एक खासियत यह है कि यहाँ साँप नहीं हैं। तुम जानते ही होगे कि साँप का सबसे प्रिय भोजन है पक्षियों के अण्डे! साँपों के न होने के कारण यहाँ पक्षी ज़मीन पर या इसके आसपास मज़े में घूमते-फिरते हैं और यहीं अपने घोंसले भी बना लेते हैं!

सेशेल्स में मुझे वहाँ से सौ किलोमीटर दूर समुद्र के बीचोंबीच "पक्षी द्वीप" नाम के एक छोटे-से टापू के बारे में पता चला। इस द्वीप पर हज़ारों-लाखों की संख्या में कुछ खास समुद्री पक्षी प्रजनन के लिए अण्डे देने आते हैं और कुछ महीनों में बच्चों के बड़े हो जाने पर फिर उड़ जाते हैं। इस छोटे-से द्वीप में मनुष्यों के जाने पर कई प्रतिबन्ध हैं।

हमने अनुमति लेकर अपने कैमरे के साथ इस अनोखे द्वीप पर जाने का मन बनाया। इस द्वीप का कुल घेरा पाँच से छह किलोमीटर होगा। यानी पैदल चलकर पूरे द्वीप का चक्कर लगाया जा सकता है। लेकिन जिन जगहों पर पक्षियों ने ज़मीन पर अण्डे दिए हैं वहाँ जाना मना है। एक छोटे-से हवाई जहाज़ में बैठकर जब हम इस द्वीप पर उतरे तो हमारे सामने द्वीप का सुन्दर दृश्य था और चारों ओर पक्षियों का कोलाहल।

आकाश में उड़ती सलेटी कुकरियाँ

इस द्वीप पर स्थाई रूप से रहनेवाले पक्षियों की संख्या शायद न के बराबर होगी। लेकिन प्रजनन के लिए कुछ खास पक्षी यहाँ हर साल हज़ारों-लाखों की संख्या में आते हैं। इनमें सबसे प्रमुख है सलेटी कुकरी (sooty tern)। ये चार से पाँच लाख की संख्या में यहाँ आती हैं। एक मचान से हमने लाखों पक्षियों और उनके बच्चों का अद्भुत नज़ारा देखा।

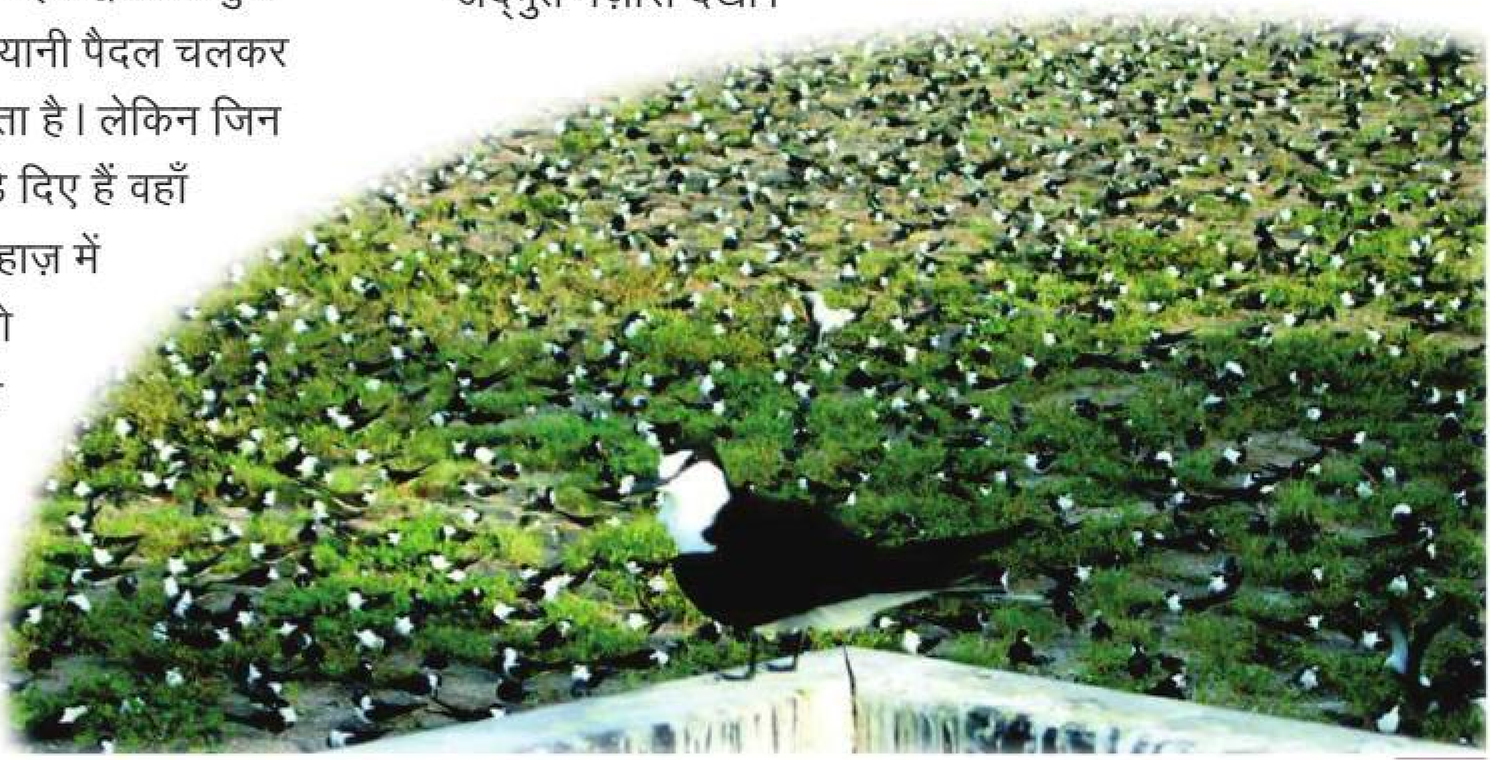

लाखों सलेटी कुकरियों के परिवार

वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि प्रजनन के लिए यहाँ पक्षी हर साल आते हैं लेकिन वही पक्षी यहाँ चार साल के बाद लौटते हैं। बीच के चार साल ये समुद्र में उड़ते हुए गुज़ारते हैं। मज़े की बात यह है कि सलेटी कुकरी को तैरना नहीं आता फिर भी इसका अधिकांश जीवन समुद्र के ऊपर उड़ते हुए बीतता है। समुद्र पर उड़ते-उड़ते ही यह गोते लगाकर मछलियाँ पकड़ती है और उड़ते-उड़ते ही हवा में अपनी नींद भी पूरी कर लेती है।

समुद्र तट के ऊँचे झाऊ पेड़ों पर हमें विशालकाय फ्रिगेट पक्षी बैठे मिले। इन्हें समुद्र के "लुटेरे पक्षी" भी कहा जाता है। ये स्वयं तो मछलियाँ नहीं पकड़ते, लेकिन समुद्र से मछली को अपनी चोंच में भरकर लौटती कुकरियों का पीछा कर ये हवा में ही उनसे मछली के टुकड़े छीन लेते हैं।

"पक्षी द्वीप" पर एक और अनोखा पक्षी – ट्रॉपिकबर्ड – भी प्रजनन के लिए आता है। यह जब हवा में उड़ता है तो इसके शरीर से कई गुना लम्बी इसकी नुकीली पूँछ हवा में लहराती फिरती है।

एक और विचित्र पक्षी है – नौडी। इसके पैर बत्तख के पैरों जैसे होते हैं। यह पानी की सतह से कीड़े और मछलियों को अपने पैरों से पकड़ने के लिए उतरता है।

हमें वहाँ एक झक सफेद कुकरी भी मिली जो दुनिया की एकमात्र पूरी सफेद कुकरी है। एक पेड़ के नीचे बड़े-बड़े कछुए सुस्ता रहे थे। इनकी तस्वीरें खींचने में कब शाम हो गई पता ही नहीं चला। हमारा मन समुद्र के नीले पानी में डुबकी लगाने का था, लेकिन तब तक हमें वापस ले जानेवाले हवाई जहाज़ का पायलट बार-बार आवाज़ देकर हमें बुलाने लगा था। सो हमें मन मारकर लौटना पड़ा। लेकिन पक्षियों के बीच पूरा दिन बिताने में मज़ा बहुत आया।

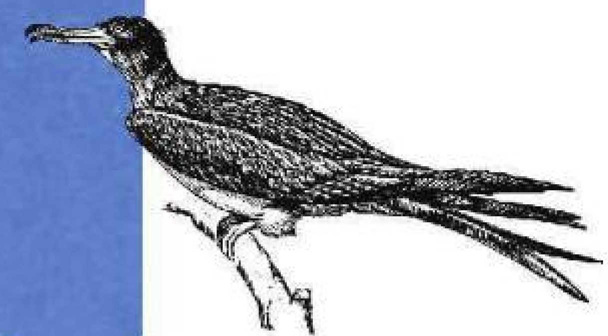

झाऊ के पेड़ पर ताक में बैठे डाकू फ्रिगेटबर्ड

सफेद पूँछवाली ट्रॉपिकबर्ड

चपटे पैरोंवाला नोडी, अपने बच्चे के साथ

नारियल के खोल में सफेद कुकरी का घोंसला

विशालकाय कछुए

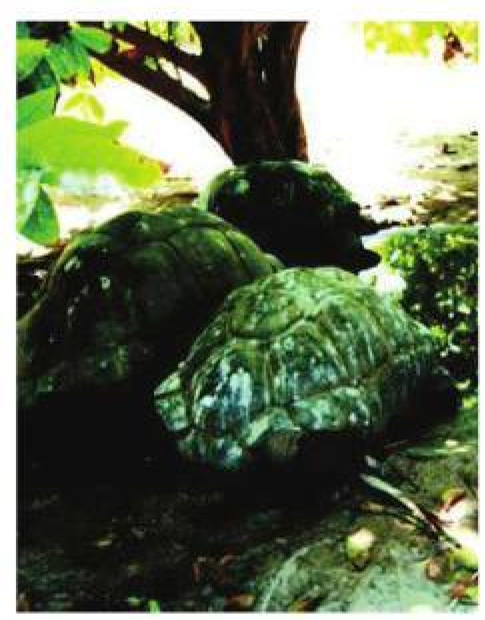

कॉफी के धब्बे किनारे पर क्यों गहरे होते हैं?

जब पूरी बूँद सूखती है तो कॉफी के ज़्यादातर कण किनारों पर होते हैं और हमें जो धब्बा मिलता है वह किनारों पर गाढ़ा होता है।

सुशील जोशी

शायद तुम बहुत सम्भलकर काम करते होगे और कभी भी तुम्हारे कप से कॉफी छलकी नहीं होगी! या हो सकता है कि तुम कॉफी पीते ही न हो! मगर मैं कॉफी पीता भी हूँ और कभी-कभार छलका भी देता हूँ। कॉफी की जो बूँद फर्श पर या मेज़ पर गिरती है, यदि उसे तुरन्त साफ न करें, तो वह सूख जाती है और कॉफी का एक धब्बा छोड़ देती है। यह धब्बा वैज्ञानिकों की रुचि का विषय रहा है।

वैसे कॉफी ही नहीं ऐसे किसी भी पदार्थ के धब्बे की एक विशेषता होती है। ऐसा लगता है जैसे सारी कॉफी जाकर किनारों पर ही जमा हो गई हो। देखनेवाली बात यह है कि कॉफी की जो बूँद गिरी थी उसमें तो कॉफी एकसार घुली थी। फिर सूखते समय ऐसा क्या हुआ कि सारी कॉफी जाकर गोले की परिधि पर जमा हो गई?

समस्या सिर्फ कॉफी की बूँद और उसके धब्बे की होती तो ज़्यादा चिन्ता की बात न होती। सूख जाने के बाद भी हम गीले कपड़े से इस धब्बे को पोंछ देते और काम हो जाता। यही स्थिति छपाई, पुताई वगैरह में भी पैदा होती है और इसलिए इस समस्या पर ध्यान देना ज़रूरी हो जाता है।

देखो ना, यदि दीवारों पर रंग पोता जाए और सूखने के बाद वह एकरूप न दिखे तो भद्दा लगेगा। आजकल कम्प्यूटर से छपाई का काम किया जाता है। इसके लिए जिन प्रिंटर का इस्तेमाल होता है उन्हें इंकजेट प्रिंटर कहते हैं। ये प्रिंटर स्याही की एक धार फेंकते हैं जो कागज़ पर गिरकर सूख जाती है। अब सोचो यदि सूखते समय सारी स्याही किनारों पर जमा हो जाए, तो कैसा लगेगा!

इन सब समस्याओं से निपटने के लिए अमेरिका के पेनसिल्वेनिया विश्वविद्यालय के एक छात्र पीटर युंकर और उनके साथियों ने कॉफी के धब्बों पर ध्यान दिया। अपने प्रयोग में उन्होंने कॉफी का उपयोग नहीं किया। उन्होंने एकदम गोलाकार प्लास्टिक के कणों को पानी में घोलकर उसकी एक बूँद गिराकर उसे सूखने दिया। थोड़ी-थोड़ी देर में उस सूखती हुई बूँद की फोटो खींच-खीचकर उन्होंने जानकारी इकट्ठी की कि आखिर कॉफी की बूँद सूखती कैसे है! इस तरह की फोटोग्राफी को टाइम-लैप्स फोटोग्राफी कहते हैं और किसी क्रिया को समझने में इसका काफी इस्तेमाल होता है।

चित्र : इन्टरनेट

वैसे पेनसिल्वेनिया विश्वविद्यालय का यह दल इस मामले में पहला नहीं था। इससे पहले भी कई शोधकर्ता कॉफी की बूँद का अध्ययन कर चुके थे। जैसे अमेरिका के ही शिकागो विश्वविद्यालय के भौतिकशास्त्रियों ने भी कॉफी की बूँद का अध्ययन किया था। उन्होंने देखा था कि बूँद किनारों पर ज़्यादा तेज़ी से सूखती है। कहने का मतलब है कि किनारों पर से द्रव का वाष्पन ज़्यादा तेज़ी से होता है। इसके कारण होना तो यह चाहिए कि बूँद सिकुड़ती जाए। ऐसा हुआ तो सूखते-सूखते बूँद इतनी सिकुड़ जाएगी कि जो धब्बा बनेगा वह बीचोंबीच एक छोटी-सी बूँद के आकार का होगा। मगर किनारों से सूखते हुए बूँद सिकुड़ती नहीं है।

कॉफी के गोलाकार कण होते हैं। सूखने वाली बूँद का किनारा जहाँ है वहाँ से सरक नहीं सकता। मगर बीच की कॉफी के कण किनारे की ओर बहने लगते हैं।

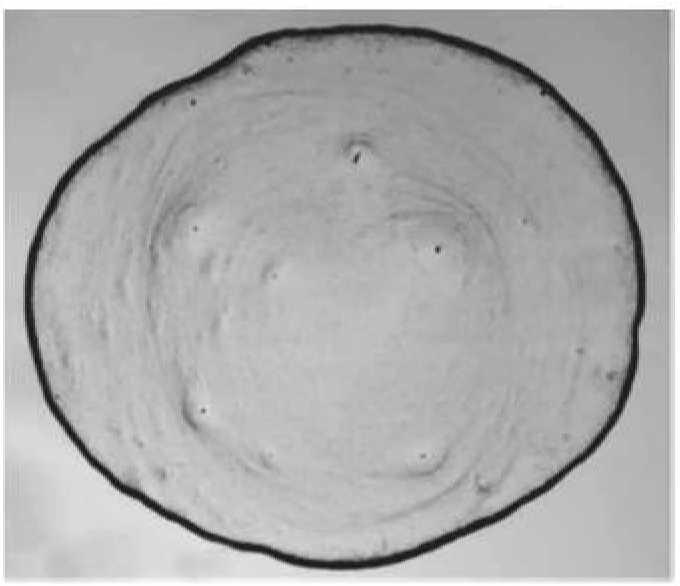

जिस सतह पर बूँद गिरी है, उसके साथ वह चिपक-सी जाती है। यानी बूँद का किनारा जहाँ है वहाँ से सरक नहीं सकता। तो होता यह है कि बीच की कॉफी किनारे की ओर बहने लगती है। अर्थात किनारे पर पानी उड़ता जाता है और बीच का पानी किनारे पर बहता जाता है। बहते पानी के साथ कॉफी के कण भी बहते हैं और किनारे की ओर चले जाते हैं। इस तरह जब पूरी बूँद सूखती है तो कॉफी के ज़्यादातर कण किनारों पर होते हैं और हमें एक धब्बा मिलता है जो किनारों पर गाढ़ा होता है।

मगर पीटर युंकर ने जो खोजबीन की है उससे लगता है कि बात इतनी ही नहीं है। उन्होंने शुरुआत तो प्लास्टिक के गोलाकार कणों से की थी मगर ये कण ऐसे थे कि इन्हें खींचकर अण्डाकार बनाया जा सकता था। कॉफी बनाने के लिए जब हम कॉफी के पावडर को पानी में घोलते हैं तो वास्तव में कॉफी पानी में घुलती नहीं है। कॉफी के बड़े-बड़े कण पानी में तैरते रहते हैं। ये कण एक-एक अणु से नहीं बने होते बल्कि कई सारे अणु जुड़-जुड़कर बड़े-बड़े थक्के बना लेते हैं जो गोलाकार होते हैं।

जब अण्डाकार कणों का गोल बनाया गया और इसकी बूँद मेज़ पर डालकर सुखाई गई तो उसके धब्बे एकसार थे यानी उनमें किनारों पर ज़्यादा पदार्थ इकट्ठा नहीं हुआ था।

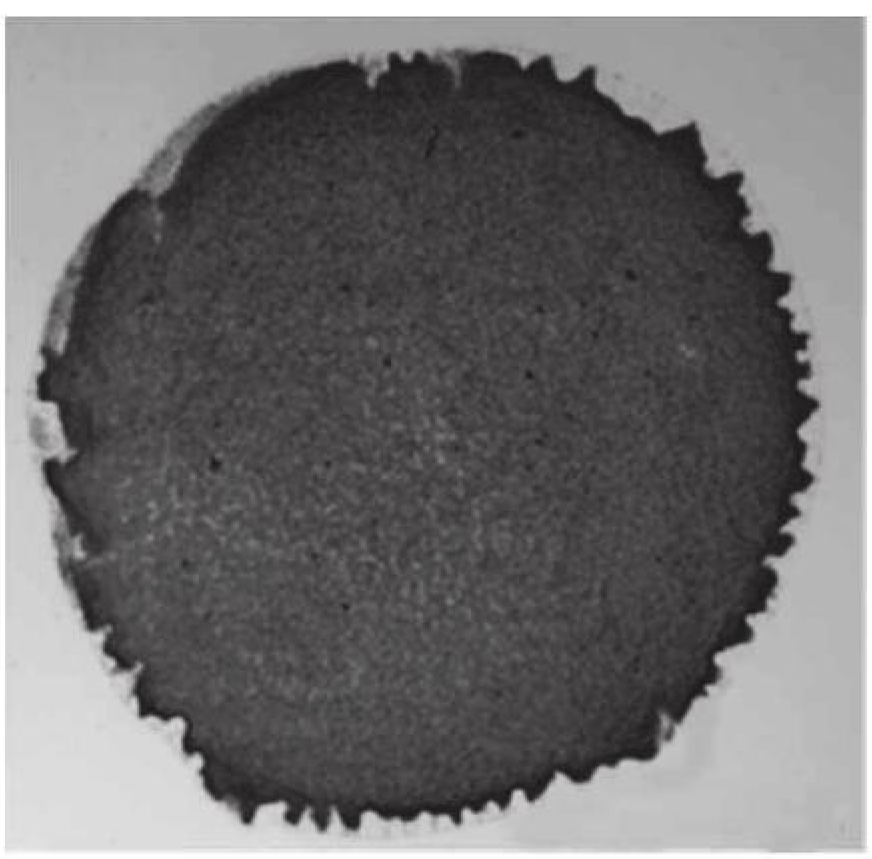

जब प्लास्टिक के अण्डाकार कणों का गोल बनाया गया और इसकी बूँद मेज़ पर डालकर सुखाई गई तो उसके धब्बे एकसार थे अर्थात उनमें किनारों पर ज़्यादा पदार्थ इकट्ठा नहीं हुआ था। यह एक नई बात थी कि सिर्फ कणों का आकार बदल देने से घोल में उनके व्यवहार में इतना परिवर्तन आ गया।

अभी तक इंकजेट प्रिंटर की स्याही बनानेवाले या पुताई के लिए रंग बनानेवाले बूँद सूखने से बने गहरे किनारेवाले धब्बों से बचने के लिए तरह-तरह की जुगाड़ करते थे। वे स्याही में या रंग में कुछ ऐसे पदार्थ मिलाते थे जो एकसार परत बनाने में मदद करें। अब चूँकि समझ में आ गया है कि यदि रंग के कणों को गोलाकार की बजाय अण्डाकार बना दिया जाए तो भी धब्बे भद्दे नहीं बनेंगे। ऐसे में शायद अतिरिक्त पदार्थ घोलने की ज़रूरत नहीं रहेगी। शायद ऐसा परिवर्तन हो भी चुका हो क्योंकि युंकर और उनके साथियों ने अण्डाकार कणों का यह कमाल 2011 में ही पता कर लिया था।

पं. किशोरदास खण्डवावासी
बम्बई बाज़ार रोड
गाँजा गोदाम के सामने
लायब्रेरी के निकटवाला खम्भा
जिसपे लिखा है डोंगरे का बालामृत

मुकाम पोस्ट फलाना-ठिकाना, अमुकजी को मिले

दिलीप चिंचालकर

इतनी तफसील से लिखे हुए पते के आखिर में शहर का नाम फिर भी नहीं है। लिखनेवाले ने मान लिया है कि उसका ज़िक्र नाम में तो है ही। फिर दोबारा लिखने की क्या ज़रूरत! चिट्ठी को बगैर भटके अपने ठिकाने पर पहुँचना ही चाहिए। अब इस पते पर रहनेवाले ठहरे रशोकि रमाकु, जो उस समय फिल्मों की आला शख्सियत भले ही न बने हों, अपनी हरकतों के कारण आसपास के मोहल्लों में ज़रूर पहचाने जाते रहे होंगे। (मनमौजी हरफनमौला कलाकार किशोर कुमार मध्यप्रदेश के खण्डवा के रहनेवाले थे। वे अपना नाम रशोकि रमाकु भी बताते थे। अपनी कविता "पान महिमा" के आखिर में उन्होंने अपना पता यूँ ही बताया था।)

मैंने अपने मित्र को पहला पत्र (छुट्टियाँ कैसे बिताईं इसका वर्णन करते हुए) तीसरी या चौथी कक्षा में लिखा था। कुछ साल बाद असली पत्र लिखना शुरू किया तब पाया कि पत्र पानेवालों के पते, मकान नम्बर और मोहल्ले के नाम लिखना उतना आसान नहीं था। उसमें फूलचन्दजी घुड़ावाला का मकान, कर्पे का बाड़ा, नाहरवाला पण्डा से पहले, पानदरिबा, अमुक के पीछे, तमुक के सामने वगैरह निकल आते थे। जो हमें स्कूल में पढ़ाए गए थे वे घरों के नम्बर आदि मज़े से गायब हो जाते थे। डाकिए को कितनी परेशानी होती होगी भालचन्द्रजी का घर ढूँढने में? पहले मकानमालिक को ढूँढो। फिर कर्पे के बाड़े में जितने भी परिवार रहते होंगे उनके किवाड़ खटखटाओ। नाहरवाले पण्डे तक जाओ और फिर लौटकर आओ। तभी तो पहलेवाला ठिकाना मिलेगा।

स्कूल छोड़कर जानेवाले सहपाठियों के पते लेते समय अब मैं मकान नम्बर और मोहल्ले का नाम जानने पर ज़ोर देने लगा। मोहल्ले के एक नाम का मसला तो सुलझा नहीं, मकानों के नम्बर कहीं-कहीं दो आने लगे – नया और पुराना। ऐसे एकाध मित्र से मिलने मैं उसके घर पहुँचा तो पाया कि घर पर दोनों में से एक भी नम्बर नहीं लिखा है। मेरे लिए यह एक दिन की बात थी मगर डाकिए के लिए तो रोज़ की कवायद थी। मेरे मन में उसकी बिरादरी के लिए घनी सहानुभूति उमड़ आई।

जब पिनकोड शुरू हुए तो मुझे अच्छा लगा। चलो, किसी छोर पर तो डाकियों को चिट्ठियाँ छाँटने, आपस में बाँटने में सहूलियत होगी। इसे शुरू हुए अब चवालीस वर्ष हो गए हैं। पिनकोड पूछने पर अधिकतर लोग कहते मिलते हैं कि वह तो मालूम नहीं। गफूरखाँ की बजरिया लिख दो, खत पहुँच जाएगा। यानी तारीफ किसकी है? खत पानेवाले की या उस डाकिए की जो घूम-घूमकर सबका अता-पता ढूँढ निकालता है। इसके बाद मेरे मन में डाकियों के लिए आदर भी बढ़ा। चवन्नी-अठन्नी के हर पोस्टकार्ड के पीछे कितना दिमाग खपाता है यह प्राणी!

एक समय ऐसा भी था जब हम एक बन्द गली के छोर पर बने तीन दड़बेनुमा घरों में से एक में रह रहे थे। जेठ की दुपहरी में डाक-तार विभाग का एक बन्दा रेडियो लाइसेंस के रुपए लेने दरवाज़े पर आया। लिफाफे पर हमारा पता लिखा था – आनन्द भुवन के सामने। खीझ से ज़्यादा मुझे हँसी आई। मैंने उसे कहा कि पते में शहर का नाम इन्दौर की बजाय इलाहाबाद होना चाहिए। क्योंकि मेरी जानकारी में तो यह भवन वहीं है। कम से कम इस तंग गली में तो नहीं ही है। वह डाकिया मुझे विनम्रता के साथ गली के मुहाने तक ले गया। ठीक सामने अरण्डी की झाड़ी के पीछे देशपाण्डे साहब का जो पुराना घर था उस पर लिखा था – आनन्द भुवन, सन् 1939।

मैंने तय कर लिया था कि अपना पता छोटे से छोटा और सभी आँकड़ों, यानी मकान नम्बर पिनकोड वगैरह के साथ लिखा करूँगा। मैं दिल्ली की पूसा इंस्टिट्यूट में पढ़ने के लिए गया था। राष्ट्रीय संस्था थी। इतनी बड़ी कि दिल्ली का एक पिनकोड उसके अपने नाम पर था। परिसर में पाँच छात्रावास थे। मेरा चौथे क्रम पर था। सो एक बार मैंने अपना पता बदलकर घर में यूँ बताया –

$$\frac{309\ (4)}{110012}$$

पिताजी चौंके मगर बोले कुछ नहीं। कुछ दिनों बाद उनकी भेजी चिट्ठी ठीक जगह आ पहुँची। पिता की उम्र के डाकिए ने चिट्ठी थमाते हुए मुझे समझाइश दी। इसे यूँ लिखो – कमरा नम्बर 309, छात्रावास क्रमांक 4, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012। फिर आगे बोला, "मैं तो तुम्हारे पिताजी के हस्ताक्षर पहचानता हूँ इसलिए केवल पिनकोड से भी चिट्ठी तुम्हारे पास पहुँच जाती। कोई अनजान व्यक्ति तुम तक पहुँचना चाहे तो वह यह समीकरण किस प्रकार हल करेगा?" मुझे लगा मेरे पिताजी ही कह रहे हैं कि बेटा अपने पर्यावरण (पास-पड़ोस) को जानो, उसका हिस्सा बनने की कोशिश करो।

पिता बनने के बाद मैंने अपनी बिटिया को जो पत्र लिखे उन पर पता कुछ इस तरह होता था –

घुँघराले बालोंवाली लड़की,
नीम के पेड़ के नीचे,
आकाश नीम के सामने लाल कवेलूवाला घर
जहाँ गाय-बकरियों का प्याऊ है,
नौ लाख पेड़ोंवाला इलाका,
होलकरों का नगर

...वगैरह। ईंट-पत्थर से बनी इमारतों की बात अलग है। घरों की पहचान उसमें रहनेवालों से, अहाते में लगे आम-नीम से ही होती है। जितने दिन मैं घर से बाहर रहता, डाकिया बिला नागा पत्र बरामदे में डाल जाता। यह बात और है कि उन दिनों डाकिया मेरी पत्नी ही हुआ करती थी।

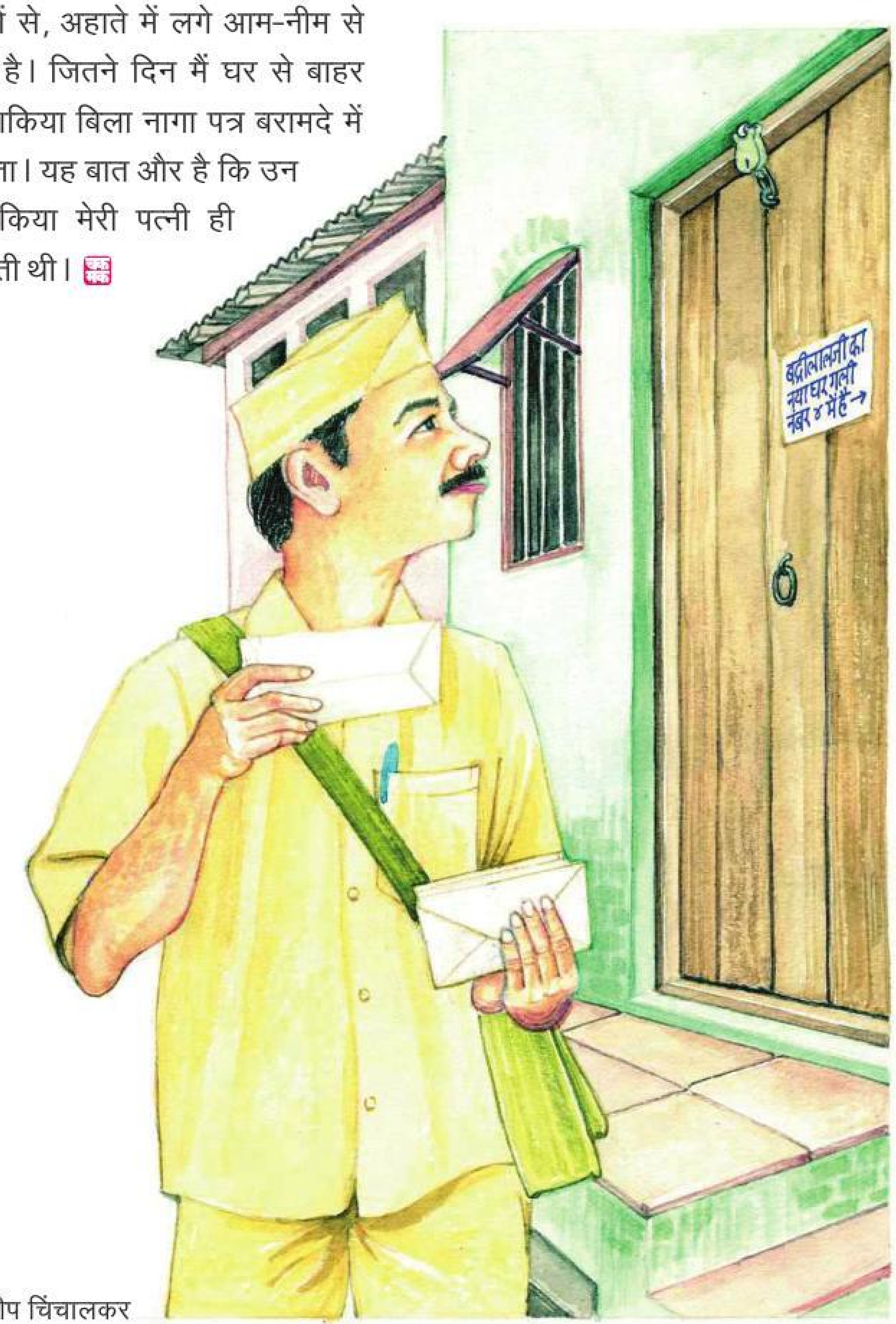

चित्रः दिलीप चिंचालकर

अकाल और उसके बाद

नागार्जुन

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त

दाने आए घर के अन्दर कई दिनों के बाद
धुआँ उठा आँगन से ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद

अकाल और उसके बाद

नरेश सक्सेना

इस छोटी-सी कविता में चार पंक्तियों में अकाल का विवरण है और चार पंक्तियों में उसके बाद का दृश्य।

इन चार पंक्तियों में भी "कई दिनों तक" हर पंक्ति के शुरू में बार-बार दोहराया जाता है।

इसके बाद बहुत थोड़े-से सरल शब्द बचते हैं जिसमें अकाल की कथा कही गई है। इस अकाल कथा की पहली चार पंक्तियों में मनुष्य कहीं नहीं है। बिम्बों में चूल्हा-चक्की है, कानी कुतिया है, चूहे हैं और छिपकलियाँ हैं।

अनाज नहीं है तो चूल्हा और चक्की तो उदास और उतरे हुए मुँह के होंगे ही। कुतिया है वह भी कानी। क्योंकि गरीब घर की है। सम्पन्न घर के कुत्ते तो झबरे बालोंवाले सुन्दर कुत्ते होते हैं। रोटी की आस में चक्की के पास पड़े नहीं रहते।

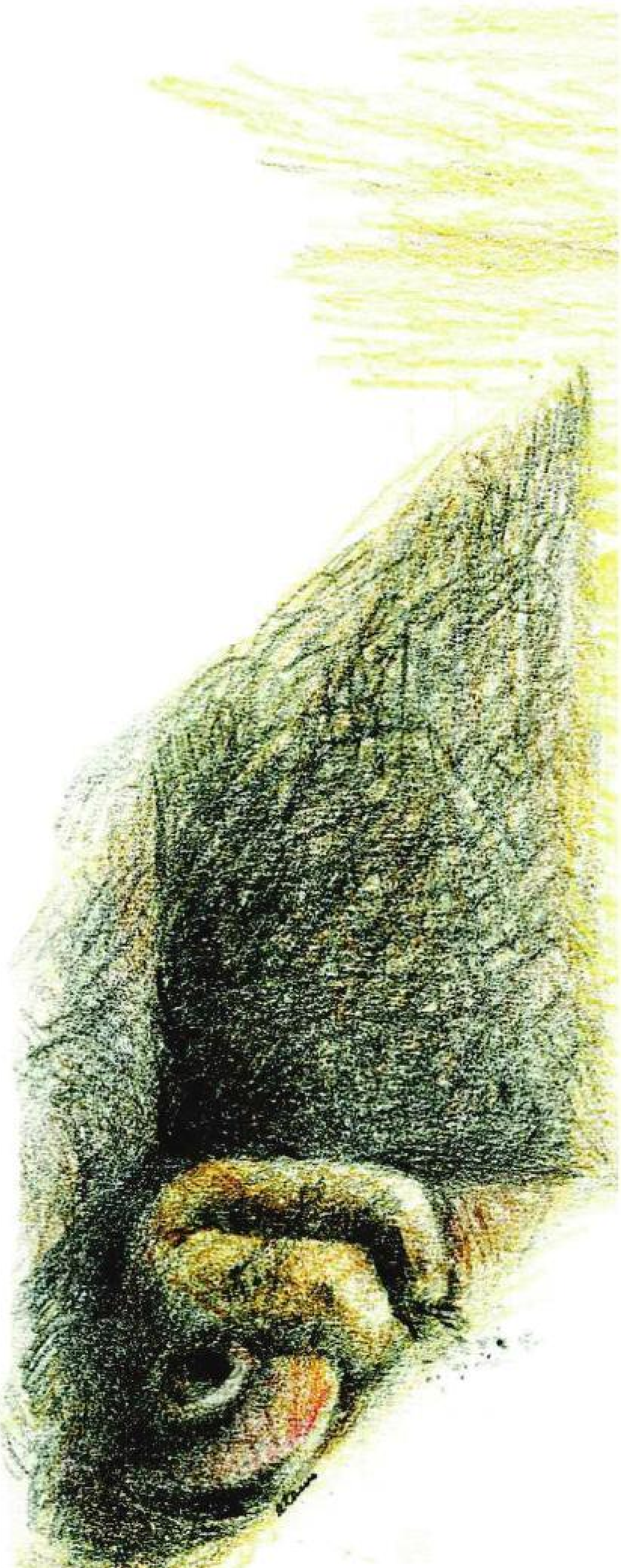

चित्रः अतनु राय

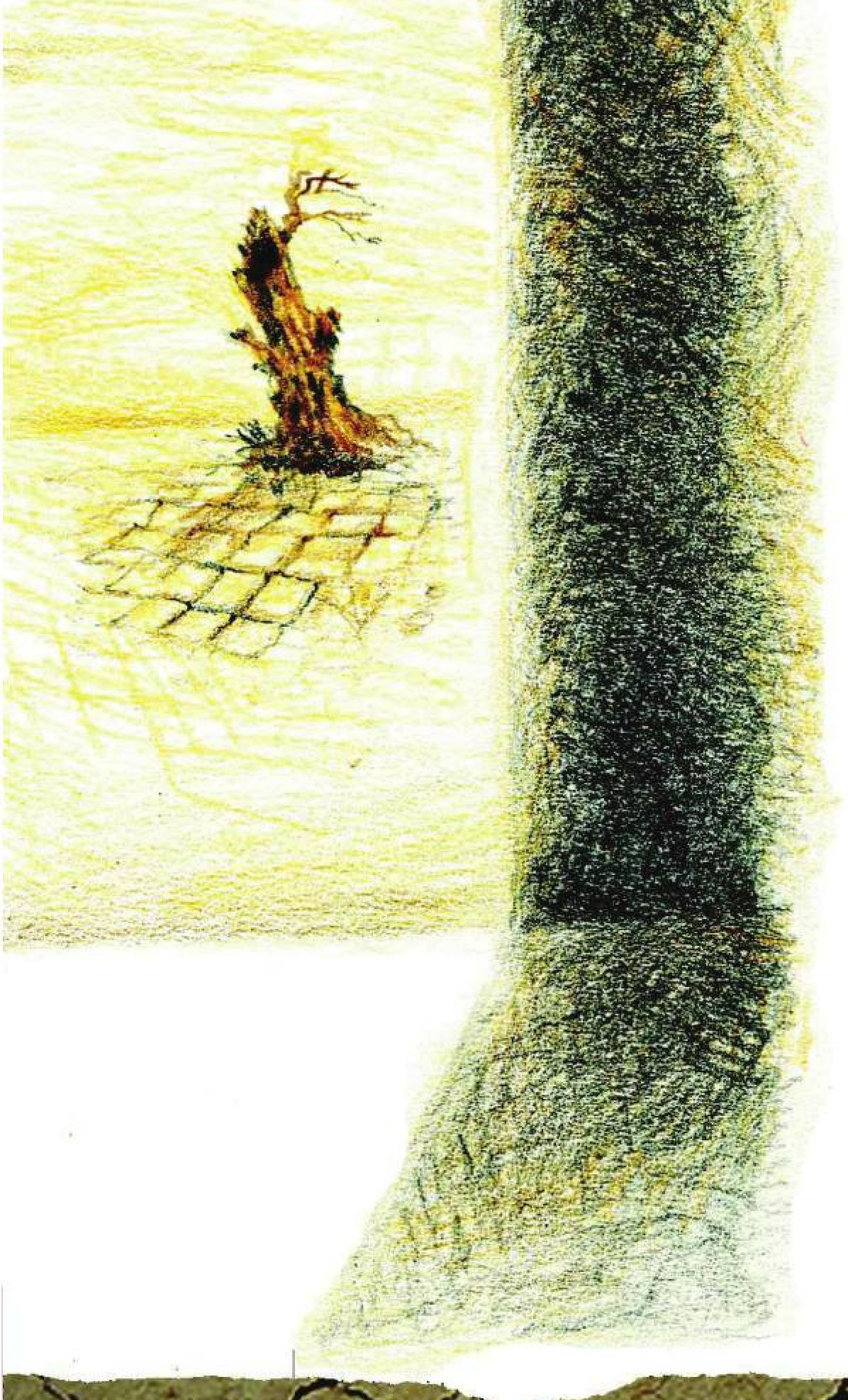

छिपकलियाँ भला क्यों भीतर परेशानहाल गश्त लगा रही हैं? क्योंकि वे तो दाल-रोटी खाती नहीं हैं, कीड़े खाती हैं। लेकिन जिस घर में भोजन नहीं है वहाँ तेल क्या होगा! लिहाज़ा रात को घर में दिया भी नहीं जलता होगा और कीड़े तो रात की रोशनी में आते हैं। दिन की रोशनी में नहीं आते। ऐसे में छिपकलियाँ भी भूख की मारी हैं। चूहे तो कुत्ते की तरह स्वामीभक्त होते नहीं। शिकस्ता हाल चूहे उस घर में कर क्या रहे हैं?

चूँकि अकाल पड़ा है इसलिए गाँव के किसी घर में अन्न नहीं होगा। वरना चूहे वहाँ चले जाते। खेतों में तो अन्न होने का सवाल ही नहीं उठता! वरना हम जानते हैं कि चूहे खेतों से अन्न चुराकर अपने बिलों में घसीट ले जाते हैं।

बाद की चार पंक्तियों में हर पंक्ति का अन्त "कई दिनों के बाद" से होता है। जो भी होता है हर पंक्ति में कई दिनों के बाद होता है।

घर के भीतर दाने आते हैं। घर भर की आँखें चमक उठती हैं। अभी भोजन बना नहीं है। लेकिन अन्न की आहट ने ही आँखों में रोशनी भर दी है। उम्मीद इसी तरह रोशनी लाती है। फिर धुआँ उठता है छप्पर के ऊपर! यानी चूल्हा जल गया है। यह धुआँ शुभ संकेत दे रहा है। और कौए अब अपने पंख खुजला रहे हैं। क्योंकि इन पंखों से वे बहुत तेज़ी-से उड़ते हैं और किसी भी थाली में झपट्टा मार के अपने हिस्से की रोटी ले उड़ते हैं।

धुआँ देखकर वे भी उम्मीद से भर उठते हैं। कुत्ते, चूहे, छिपकलियाँ और कौए भी सामाजिक प्राणी हैं। वे बस्तियों में, घरों में मनुष्यों के साथ ही रहना चाहते हैं। उजाड़ में नहीं।

नागार्जुन की अकाल के एक बड़े दृश्य की इस छोटी-सी कविता में कोई कठिन शब्द तो है ही नहीं। तुम इस कविता को बार-बार पढ़ोगे तो बाकी खूबियाँ खुद उजागर होंगी। यह कविता भी दिल के धड़कने की ताल यानी कहरवा ताल (यानी वही ताल जिसमें अक्कड़-बक्कड़, ट्विंकल-ट्विंकल जैसे गीत हैं) में है। इब्नबतूता कविता भी इसी ताल में है।

रुखी-सुखी

यह किताब पश्चिमी निमाड़ में पड़े अकालों के बारे में है। अकाल को लेकर आदिवासियों के अनुभवों के बारे में है। किताब की सामग्री आधारशिला स्कूल के बच्चों ने जुटाई है। यह स्कूल इसी इलाके के साँकड़ गाँव में चल रहा है। बच्चों ने अपने तथा आसपास के कुछ गाँवों के बुज़ुर्गों से पूछ-पूछकर यह सामग्री जुटाई है। इस किताब के कुछेक अंश पेश हैं...

अकाल क्यों पड़ा?

बहुत कम पानी गिरा इसलिए अकाल पड़ा। सारी फसल मर गई।... नदी-नाले सूख गए। केवल एक-दो जगह ही झरनों में पीने का पानी था। पेड़ भी बहुत मरे। ...मोगरी के रामा भाई ने बताया कि एक बार उन्दर (चूहा) काल पड़ा था। उस साल चूहे बहुत बढ़ गए थे। चूहों ने सारी फसल खा ली थी। अनाज भी खा गए थे। कुछ लोगों का कहना है कि इस अकाल में लोगों ने चूहों की लेड़ियाँ धोकर, पीसकर खाई थीं। ...इसी तरह एक बार...

अकाल में लोग क्या खाकर जिए?

अकाल में कुछ नहीं पका। जिसको जो मिला वह खा जाता था। पेड़ की पत्ती, छाल, बैल-गाय की हड्डियाँ – किसी भी चीज़ को पीसकर खा जाते थे। ....

पानी कहाँ से पीते थे? अकाल में जानवरों और चिड़ियों को क्या हुआ? अकाल में लूटपाट, अकाल के दूसरे साल क्या हुआ? अकाल से किसका फायदा हुआ? जैसे कई अनुभव अकाल को समझने में मदद करते हैं। फिर अकाल की किंवदन्तियाँ हैं। ....एक परिवार को एक मक्के का दाना मिल गया। उस दाने को उबालकर उसका पानी पीते थे। दूसरे दिन फिर से उबालकर उसका पानी पीते थे। एक दिन एक बच्चे को वह दाना मिल गया। उसने वह दाना खा लिया। तो परिवार के सारे लोग मर गए। ..

अकाल से बचने के तरीकों के बाद एक आखिरी कहानी है –

एक बार बरसात के देवता ने तय किया कि 9 साल तक पानी नहीं गिराना है धरती पर। तो ऐसा ही हुआ। एक किसान था जो हर साल हल लेकर खेत में जाता और खेत खेड़ता रहता। एक साल पानी नहीं गिरा। तो भी वह हल लेकर खेत खेड़ने गया। ऐसे हर साल पानी नहीं गिरता था पर किसान खेत खेड़ता रहता।

एक बार जब वह खेत खेड़ रहा था तो पानी बाबा उसके पास आए। उससे बोले, “तू क्यों खेत खेड़ता जा रहा है? पानी और बहुत साल नहीं गिरनेवाला। बेकार क्यों मेहनत कर रहा है? देख तेरे साथ के सब लोग तो और दूसरे धन्धे करने चले गए।” किसान ने कहा कि अगर मैं खेडूँगा नहीं तो मैं हल चलाना ही भूल जाऊँगा। मेरे खेती के सब औज़ार पड़े-पड़े खराब हो जाएँगे। मेरे बैल भी खेती लायक नहीं रहेंगे। और कभी न कभी तो पानी पड़ेगा ही। तब मैं कैसे खेती करूँगा?

किसान की बात सुनकर पानी बाबा भी सोच में डूब गए। उन्होंने सोचा कि अगर किसान खेती करना भूल सकता है तो हो सकता है कि मैं भी बरसना भूल जाऊँ। फिर क्या होगा? ऐसा सोचकर पानी बाबा ने तुरन्त बरसात शुरू कर दी।

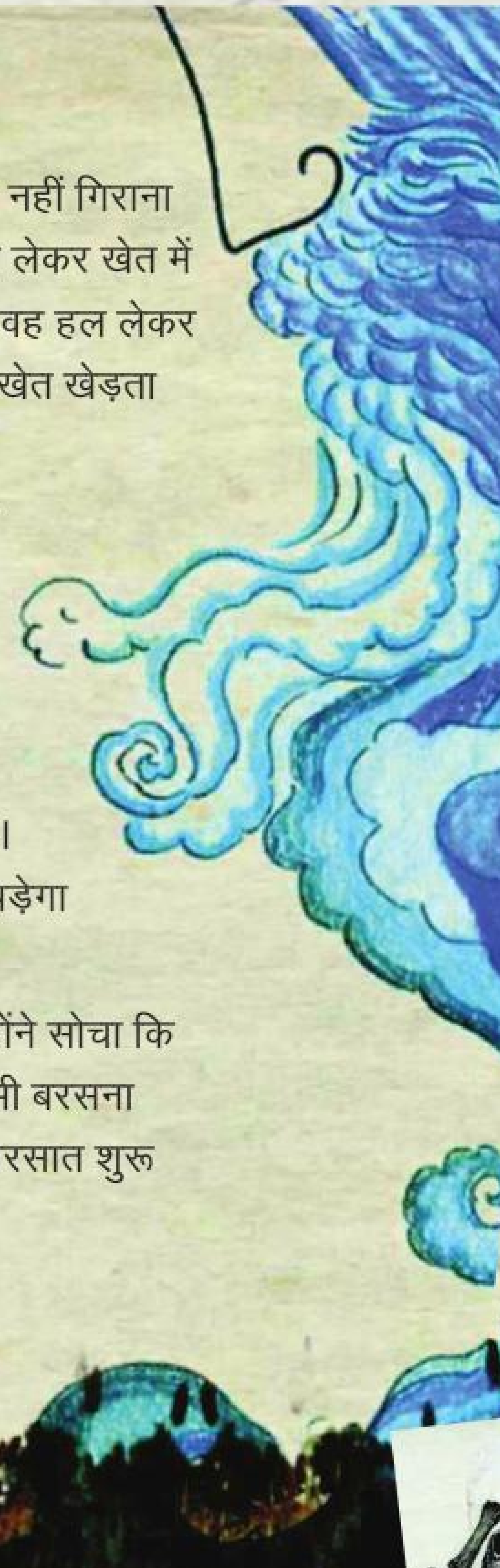

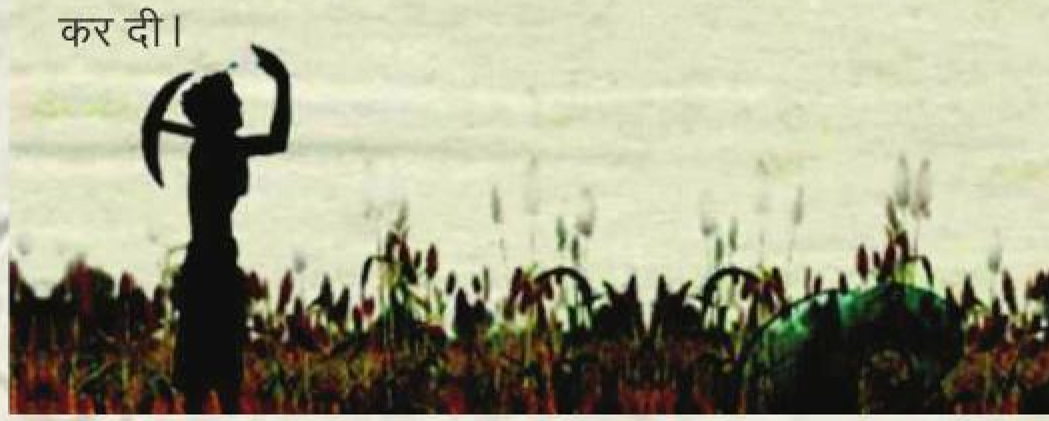

इस किताब को एकलव्य प्रकाशन ने छापा है। किताब की कीमत है पैंतालीस रुपए। इस किताब की चित्रकार नरगिस शेख हैं। पुरानी तस्वीरों तथा चित्रों से उन्होंने इस किताब में कई खिड़कियाँ बना दी हैं जिनके पार पाठक इस त्रासदी की एक झलक देख पाता है। किताब मँगाने के लिए तुम चकमक के पते पर सम्पर्क कर सकते हो। या www.eklavya.in पर जाकर ऑनलाइन ऑर्डर कर सकते हो।

(कभी फुरसत से अपने गाँव, मोहल्ले या शहर के बड़े-बुज़ुर्गों से पुराने ज़माने के किस्से-कहानियाँ सुनो। चाहो तो उन्हें चकमक के पाठकों को भी पढ़वाओ।)

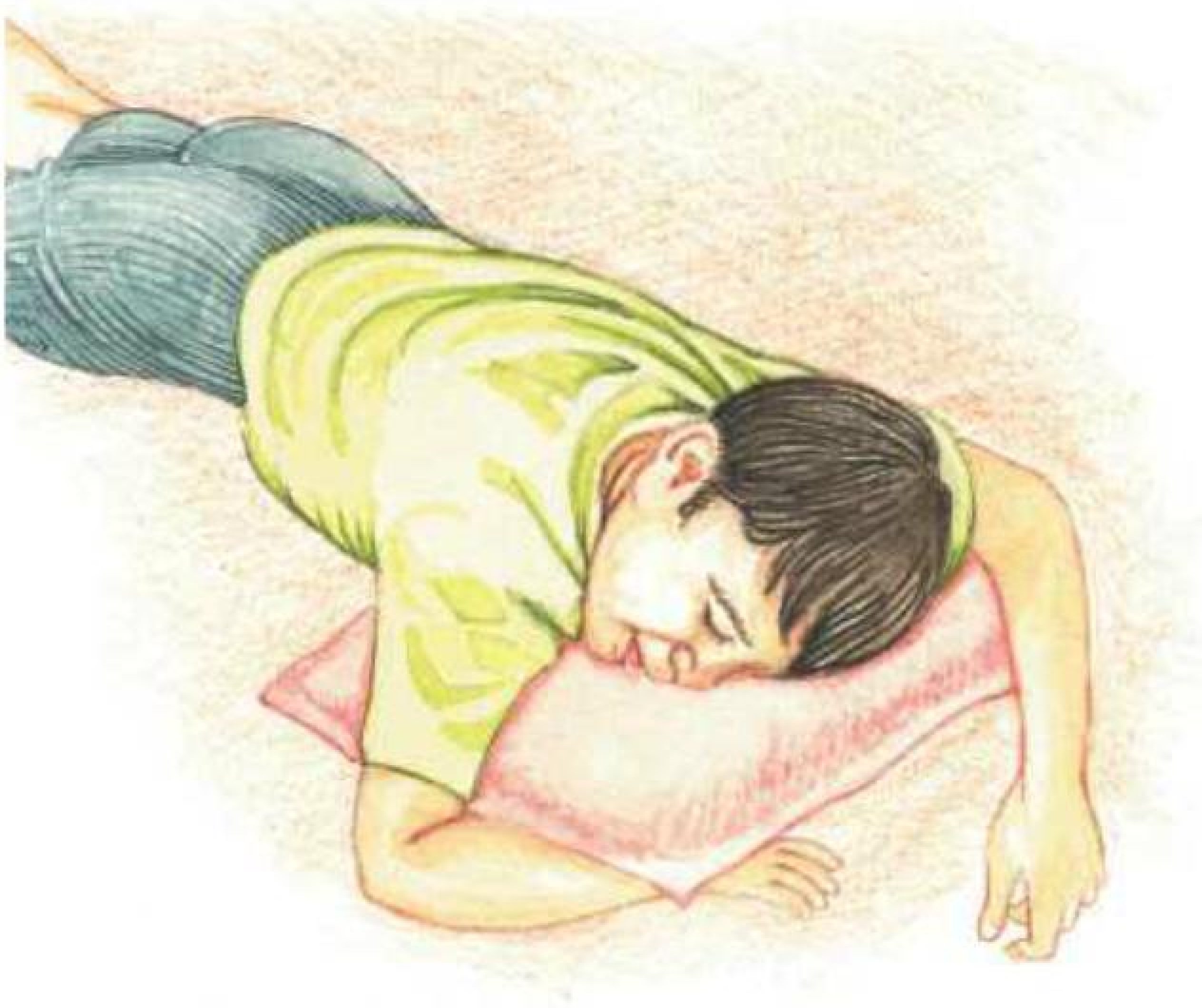

सुनो कहानी एक फूल की

प्रकाश नारायण सन्त

अनुवादः अलकनन्दा साने

उस दिन मैं सुबह सोने का ढोंग करते हुए, बिस्तर पर यूँ ही पड़ा था। दूर कहीं कुछ पक्षी शायद कह रहे थे कि "सुबह हो गई उठो"। अच्छी-खासी ठण्ड थी। नीचे से दादी की आवाज़ आ रही थी। पर उससे भी तेज़ थी बर्तनों की आवाज़ें। सोने का नाटक मैं इतनी अच्छी तरह से कर रहा था कि थोड़ी देर बाद खुद मुझे लगने लगा कि मैं सो रहा हूँ। फिर भी बार-बार किसी न किसी वजह से मुझे महसूस हो ही रहा था कि मैं जग रहा हूँ। इससे मुझे झल्लाहट हो रही थी। बीच-बीच में दादाजी आवाज़ें देकर मुझे उठाने की कोशिश कर रहे थे। मुझे बहुत गुस्सा आ रहा था। लेकिन यह रोज़ का किस्सा है। शनिवार को स्कूल जल्दी जाना होता है और मेरी आँख खुलने का नाम ही नहीं लेती। कभी खुल भी गई तो क्या? उठने के लिए दादी की यह झिड़की ज़रूरी होती है, "अब उठता है कि दूँ एक खींचकर?" छुट्टी के दिन अगर यह तय किया जाए कि देर तक सोना है, तो पहले तो नींद ही नहीं आती और किसी तरह आ गई तो सुबह-सुबह दादाजी की खटर-पटर चालू हो जाती है। इतना गुस्सा आता है कि बस! क्या ज़रूरत है इतनी सुबह काम करने की? कभी चूँ-चूँ बोल रहे पुराने स्टूल को ठीक करेंगे, तो कभी कहीं कोई कील ठोंकने लगेंगे। और कुछ नहीं तो रंग करने लगते हैं और उसकी खुशबू से नींद उड़ जाती है। इधर दादाजी के काम चलते रहते हैं, उधर दादी का बड़बड़ाना – देखना ध्यान से, कील न लग जाए! रंग कपड़ों पर तो नहीं गिराया? उस पर दादाजी के जवाब! नींद की तो समझो ऐसी-तैसी हो गई। उठने पर दादाजी की ड्यूटी पर तैनात होना पड़ता है – कभी हथौड़ी चाहिए, तो कभी कील, बीसियों काम। काम करें भी तो कैसे? दादी की कसम, दादाजी की कोई चीज़ कभी दोबारा उसी जगह मिलना नामुमकिन! दसियों बार ऊपर-नीचे करने पर भी चीज़ नहीं मिली तो उसका दोष भी मुझी पर लगता है। चीज़ें मिल जाएँ तो दादाजी से कुछ-न-कुछ गलती हो जाती है। वो गलतियाँ भी मेरे ही माथे आती हैं। एक बार दीवार में कील ठोंकते समय अपना अँगूठा लहूलुहान कर लिया। दादी नाराज़ हुईं तो कहने लगे, "काम करते समय भी इसे चैन कहाँ? परेशान करता रहता है।" मैं तो अच्छा-भला गहरी नींद में सोया था। मुझे तो मालूम भी नहीं कि अचानक ठोंका-पीटी बन्द कैसे हो गई? जब मेरी नींद खुली तो देखा दादी उनकी उँगली पर दवाई लगा रही थीं। लेकिन दादाजी ने मुझ पर जो इल्ज़ाम लगाया दादी ने उसे ही सही माना और मुझी को डाँट खानी पड़ी। तो इस तरह पूरी की पूरी सुबह खराब हो जाती है। ऐसे में यही ठीक लगता है कि नींद का ढोंग रचाकर चुपचाप पड़े रहो।

शेजारी

मराठी भाषा के इस शब्द का मतलब होता है – पड़ोसी।

इस कॉलम में हर महीने मराठी साहित्य की रचनाएँ तुम पढ़ सकोगे। गौरी कानितकर की मदद से यह कॉलम सम्भव हुआ है। उनकी संस्था यूनीक फीचर्स बड़ों व बच्चों के लिए साहित्य तथा अन्य सामाजिक मुद्दों पर पत्रिकाएँ तथा किताबें प्रकाशित करती है।

"आ" लिखने के बाद दादाजी ने उसे पौंछने की कोशिश की क्योंकि उसकी दशा भी "वा" जैसी ही हो रही थी।

उस दिन अल सुबह नींद खुल गई थी। चारों तरफ अँधेरा था। बड़ा अजीब-सा लग रहा था। आँख खुली तो मेरी समझ में यह भी नहीं आया कि मैं किस दिशा में सिर रखकर सोया हूँ। पूर्व या पश्चिम? या ईशान? ये सारी दिशाएँ मुझे याद आईं। उन्नीस सौ बार स्कूल में पढ़ाई थीं मास्टरजी ने, लेकिन जब भी वे इनके बारे में पूछते मुझे कुछ याद नहीं आता। उनके सवाल अकसर इस तरह के रहते हैं – माना कि मैं पूर्व दिशा की ओर मुँह किए खड़ा हूँ तो बताओ ये (कहीं इशारा कर) दिशा कौन-सी है? इसके जवाब में जब कक्षा के सारे बच्चे "ईशान (उत्तर-पूर्व), वायव्य (उत्तर-पश्चिम)" आदि बताते तो मैं सिर्फ होंठ हिलाता रह जाता। कभी-कभी थोड़ा-बहुत समझ में आने भी लगता है। उसी वक्त मास्टरजी अपना मुँह किसी और दिशा में घुमा लेते और फिर वही प्रश्न। दिशा बदलते ही फिर सारा गड़बड़झाला। सुमी के दादाजी को दिशाओं से बड़ा लगाव है। हमेशा दिशाओं की भाषा ही बोलते रहते हैं। कभी उनसे पूछा जाए कि झोला कहाँ रखा है तो वे बताएँगे, "बीच के कमरे के दरवाज़े की वायव्य दिशा में लगी खूँटी पर है।" मुझे तो वह मिलने से रहा। तब वे इस बात को लेकर मुझे चिढ़ाते – दिशाएँ जिसे नहीं समझ आएँगी, मूँछें उसकी नहीं फूटेंगी। गुस्सा तो इतना आता है और मन होता है कि कह दूँ – यहाँ मूँछों की ज़रूरत किसे है? बेकार दाँतों में अटकती हैं।

सुमी के घर में सब दीवारों पर नीले रंग से दिशाओं के नाम लिखे हुए हैं। उन्हें देखकर लगता है जैसे भूगोल की किताब में घूम रहे हैं। हमेशा ऐसा लगता है जैसे नैऋत्य (दक्षिण-पश्चिम) की मौसमी हवाएँ बह रही हैं। इन हवाओं को देखने की भी इच्छा होती है, पर सुमी के दादाजी को प्रश्न पूछने की बड़ी खराब आदत है। ज़रा कहीं मैं खड़ा दिखूँ तो पहले पास बुलाएँगे, फिर पीठ पर हाथ फेरकर लाड़ जताएँगे और अचानक पूछ लेंगे, "सवा, डेढ़ा, पौना आता है कि नहीं?" मोड़ी लिखते हो? वगैरह। अब मुझे तो कुछ भी नहीं आता, पर बार-बार "नहीं आता, नहीं आता" कहने में भी शर्म आती है। सो वहाँ से भागने में ही भलाई होती है।

चित्र : दिलीप चिंचालकर

पिछले साल जब घर की पुताई हुई तो उनकी देखा-देखी मेरे दादाजी ने भी सुबह-सुबह उठकर दीवारों पर नीले रंग से दिशाओं के नाम लिखना शुरू कर दिया। मैं जग गया था और अधखुली आँखों से उनकी ओर देख रहा था। कुर्सी पर स्टूल रखकर वे उस पर खड़े थे और होंठों के बीच से जीभ बाहर निकालकर हम जिस तरह पहाड़े लिखते हैं, वे नीले रंग में ब्रुश डुबोकर दिशाओं के नाम लिख रहे थे। पूर्व, पश्चिम के बाद उन्होंने एक कोने में "वायव्य" लिखा। वायव्य के "वा" की मात्रा लिखते ही उसकी डण्डी से रंग बह निकला और सीधा ज़मीन पर जा गिरा। उस समय दादाजी दूसरे कोने में "आग्नेय" (दक्षिण-पूर्व) लिख रहे थे। "आ" लिखने के बाद उन्होंने उसे पौंछने की कोशिश की क्योंकि उसकी दशा भी "वा" जैसी ही हो रही थी। तभी दादी को आता देख मैंने अपनी आँखें कसकर बन्द कर लीं। हम याद रखने के लिए अगर दीवार पर पेंसिल से कुछ लिखते तो दादी पैर के अँगूठे पकड़कर हमें खड़ा कर देतीं। और अब ...बाप रे! ......मैं तो डर ही गया था। बहुत देर तक कोई आवाज़ नहीं आई तो मैंने धीरे-से आँखें खोलीं। दादी कमर पर हाथ रखे खड़ी थीं और दादाजी वहीं ऊपर खड़े-खड़े दादी की ओर देख रहे थे। बिचारे डर गए थे। दादी कुछ कहतीं, इससे पहले ही वे बोल पड़े, "सुनो! इसे दिशा-ज्ञान बिलकुल नहीं है न ....बस इसलिए...थोड़ा-सा।"

तभी उन्हें लगा कि स्टूल हिल रहा है। वे खुद को सम्हालने लगे। इसी बीच उनके हाथ से रंग का डिब्बा छूटा। और दादी द्वारा दो-तीन दिन पहले ही धोकर बिछाए जाजम पर एक बड़ा-सा धब्बा चमकने लगा। जिस दिन दादी ने इसे धोया था उसी दिन मुझे धमकाया था, "खबरदार! इस पर कुछ गिराया तो! मेरा पाव भर खून जला है इसे धोने में।" उस डाँट को याद कर मैं उठ बैठा। दाग फैलता जा रहा था। दादाजी अब भी ऊपर से ही कभी दादी और कभी धब्बे को देख रहे थे। शायद अगले उन्नीस घण्टे वे ऊपर ही टँगे रहते यदि दादी उन्हें सुनाकर मुझसे न कहतीं, "लम्प्या! बिस्तर पर बैठा क्या कर रहा है? उठ और तेरे दादाजी को नीचे उतार। देख रहा है न, कैसे बच्चे की तरह वहीं सिमट गए हैं।"

डर के मारे मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। मैं खड़ा हुआ। चड्डी खिसक रही थी। उसे एक हाथ से सम्हालते हुए मैंने अपना दायाँ पैर आगे बढ़ाया ही था कि दादाजी नीचे उतर आए और दादी की ओर देखकर मुस्कराने की कोशिश की। और यहीं दादाजी से बड़ी गलती हो गई। दादी को यह बिलकुल भी पसन्द नहीं आता कि कोई गलती करे और ऊपर से हँसे भी। मन हुआ अब अपने कानों पर हाथ रख लूँ। पर अभी कोई भी हरकत करने का मतलब था दादी का ध्यान वहाँ से हटाकर अपनी तरफ खींचना। और जो खतरे से खाली नहीं था। दादाजी मेरी तरफ देखते हुए ऐसा दिखाने की कोशिश कर रहे थे जैसे उन्हें कुछ भी नहीं लग रहा, डर तो बिलकुल नहीं। जब उनकी ये कोशिशें कुछ ज़्यादा हो गईं तो दादी ने झुककर गुस्से में जाजम को अपनी ओर खींच लिया। हमारी मदद लिए बिना उसे तह किया और उठाकर नीचे ले जाने की कोशिश करने लगीं। हमारा जाजम है बहुत भारी। वो क्या उठता दादी से? यह देखकर दादाजी दादी की मदद के लिए आगे आए। पर दादी उनके हाथों को झटककर दादाजी को सुनाते हुए मुझसे कहने लगीं, "लम्प्या! कह दो मुझे किसी की मदद की ज़रूरत नहीं। वे आराम से बैठें और कृपाकर मेरे काम में दखलन्दाज़ी न करें।" मैं बीच में फँस गया था। पर दादाजी का चेहरा ऐसा था, जैसे वे ही फँस गए हों। वे उसी भाव से दादी से बोले, "पार्वती कुछ कहो! मुझे बड़ा अजीब लग रहा है।" दादी कुछ न बोलीं। उन्होंने मुझे इशारा किया और हम दोनों ने जाजम उठाकर सीढ़ियों से नीचे धकेल दिया। नीचे उतरते हुए दादी दरवाज़े के पास रुकीं और बोलीं, "उन्हें बता दो मुझे अब कुछ नहीं कहना है और कहो कि यदि अपने पोते को पढ़ाने का इतना ही शौक है तो किताब लेकर पढ़ाओ। उधर वो एक नमूना दीवारें चितर रहा है, वही काफी है। सोने जैसी दीवारों पर लिखने की इच्छा होती ही कैसे है? और मेरी मदद करनी ही है तो उनसे कहो पुताइवाले को बुलाकर दीवारें फिर से पुतवा लें। और आखरी बार बता रही हूँ दिवाली में मेरे घर की दीवारों पर गलत-सलत दिशाएँ मुझे नहीं चाहिए।"

दादाजी बार-बार यूँ ही इधर-उधर घूमते हुए आते और रसोई में झाँक जाते। फिर वे दादी के आगे-पीछे करने लगे तो दादी को कहना पड़ा, "क्या बच्चों जैसी हरकतें कर रहे हो।"

देर तक दादाजी आग्नेय का "आ" पौंछने की कोशिश क्यों कर रहे थे, यह अब मेरी अच्छी तरह समझ में आ गया। मैंने उनकी ओर देखा तो उन्होंने नज़रें चुरा लीं और छत की ओर देखने लगे। दादी चली गईं तो वे बोले, "रसोई में बैठ-बैठकर वो सारी दिशाएँ भूल गई है।" बाद में सही-सही सारी बातें सुमी ने बतलाईं। एक बार फिर से सुमी के दादाजी ने मुझसे दिशाओं वाला सवाल पूछा और मैंने फिर से गलत जवाब दिया तो उन्होंने मुझे ताना मारा, "तू तेरे दादाजी का असली पोता है।" लेकिन इसके बाद दादाजी मुझे और अच्छे लगने लगे।

इस घटना के बाद से हमारे घर की दीवारों से दिशाएँ गायब हो गईं। इसी कारण सुबह सोकर उठने पर मुझे समझ नहीं आया कि मेरा सिर किस दिशा में है। एक बार लगा मैं सीढ़ियों की ओर सिर करके सो रहा हूँ, फिर लगा कि शायद बड़ी अलमारी की ओर मेरा सिर है। थोड़ी देर बाद मुझे महसूस हुआ जैसे चारों दिशाओं में मेरा सिर है। मैं बिस्तर पर उठ बैठा तो एक क्षण के लिए मुझे एक मूर्खोंवाला विचार आया कि कहीं मेरा सिर नीचे की ओर तो नहीं है! डर के मारे मैं चिल्लाने ही वाला था कि खिड़की से मुझे हलका-सा आकाश दिखाई दिया। उसी क्षण मुझे अच्छी तरह समझ आ गया कि मैं अलमारी की ओर सर करके सोया था। मैं सोच रहा था वैसे ही बैठा रहूँ जैसे सिन्दबाद अँधेरी गुफा में बैठा रहा था। तभी दादाजी ने धीमी आवाज़ में मुझे पुकारा। मैंने नींद का बहाना किया और पड़ा रहा। लेकिन दादाजी लगातार बुला रहे थे तो मुझे उठना ही पड़ा। वे मेरे पास आकर कुछ कहने ही वाले थे कि दादी की आवाज़ सुनाई दी, "यह कोई सोने का वक्त है? छोटों के साथ बड़े भी वैसा ही करने लगे तो अब इसे क्या कहा जाए?"

अब कुछ भी कहा नहीं जा सकता था। मैं दौड़ लगाकर नीचे गया। वहाँ चमकदार धूप खिली थी। दाँत साफ कर ही रहा था कि दादाजी दिखे। वे आज कुछ खास व्यस्त दिखाई दे रहे थे। मुँह में मंजन होने की वजह से मैं उनसे कुछ पूछ नहीं पाया। कुल्ला करके मैंने हाथ-मुँह धोया और फिर उन्हें ढूँढा। लेकिन वे कहीं दिखाई नहीं दिए। तो मैं पिछवाड़े जाकर बैठ गया। आज सुबह से कुछ अलग-सा महसूस हो रहा था। अन्दर भी मुझे कुछ अलग ही लगा। खूब सोचने पर भी कुछ समझ नहीं आया। मैं उकताकर यूँ ही घास पर चल रही चींटियों को देखता रहा। फिर उससे भी ऊब गया।

वे गुनगुना रही थीं। गाते समय दादी की उम्र कम लग रही थी, माँ जैसी। मैंने गुलाब का वो फूल धीरे-से उनके सामने किया।

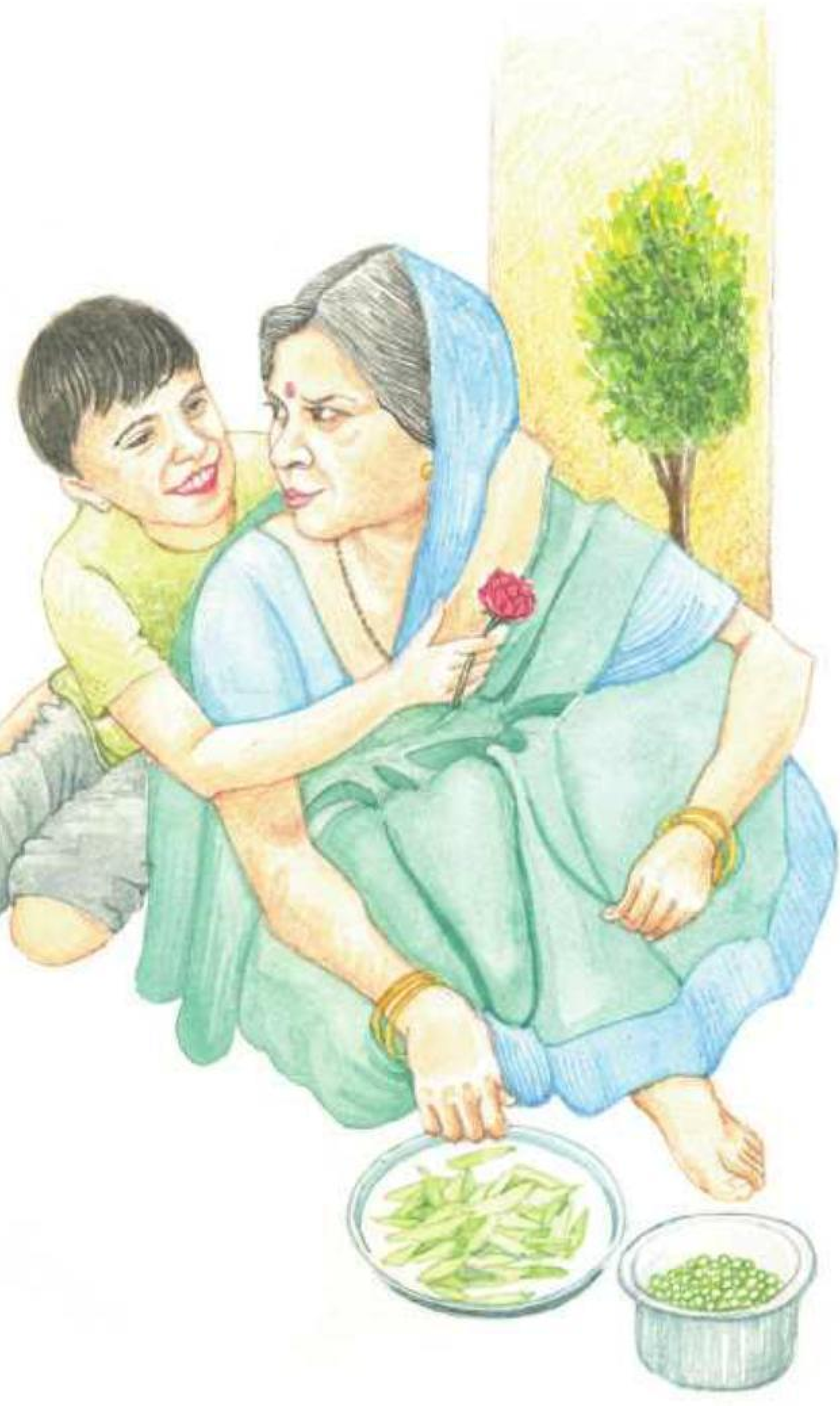

और पागलों की तरह सूरज की ओर देखने लगा। उसके बाद नीचे देखा तो कुछ दिखाई नहीं दिया। इसमें मुझे बहुत मज़ा आया। मैं बार-बार यही करने लगा। लेकिन जल्दी ही इसका भी मज़ा जाता रहा। मैं अन्दर आ गया। वहाँ किसी चीज़ की बहुत अच्छी खुशबू आ रही थी। दादी ने नई साड़ी पहनी थी और वह छाछ बिलोकर मक्खन निकाल रही थीं। मक्खन खाने की इच्छा हो रही थी, पर दादी से कुछ कहने की हिम्मत न हुई। वो कुछ बुदबुदा रही थीं। दादाजी बार-बार यूँ ही इधर-उधर घूमते हुए आते और रसोई में झाँक जाते। फिर वे दादी के आगे-पीछे करने लगे तो दादी को कहना पड़ा, "क्या बच्चों जैसी हरकतें कर रहे हो। लग रहा है जैसे कुछ खो गया है। मेरे आगे-पीछे मत आओ। एक जगह बैठ जाओ। मेरे पास बहुत काम हैं।"

दादी का वह रूप देखकर मैंने मक्खन की उम्मीद छोड़ दी और बाहर आ गया। बाहर कोने में मेरी पतंग का सामान पड़ा था। मुझे बहुत दिनों से एक अच्छी पतंग बनानी थी। मैं आलथी-पालथी डालकर वहीं बैठ गया। पर दादाजी का मन अशान्त था। वे अब भी इधर-उधर डोल रहे थे। कभी मेरे सामने आ खड़े होते। कभी दरवाज़े से बाहर झाँकने लगते। तो कभी रसोई का चक्कर लगा आते। ऐसा वे बड़ी देर तक करते रहे। उनका यह बरताव मेरी समझ से परे था। पतंग बनाने की बजाय मेरा ध्यान बार-बार दादाजी की ओर जा रहा था। मुझे लगा कि मैं भी बड़ा होता तो दादाजी से कहता – एक जगह शान्ति से बैठो ज़रा। उसी समय अन्दर से फिर दादी की आवाज़ आई। वे गुस्से में कुछ बोल रही थीं। दादाजी तुरन्त बाहर आकर मेरे पास बैठ गए। बहुत देर तक वे बाहर ही देखते रहे। फिर बोले, "तुम लोगों की कैसी पतंग होती है! एकदम बेकार!"

मैंने पतंग बनाना बन्द कर दिया क्योंकि पतली गोंद से कागज़ चिपक नहीं रहा था। उन्नीस बार गोंद लगाई और उन्नीस बार कागज़ निकल आया। मेरी हरकतों को दादाजी बड़े गौर से देख रहे थे। वे बोले, "पता है, हम छोटे थे तो एक-एक हाथ की पतंग बनाते थे। हमारे घर के दुबले-पतले बच्चे उस पतंग के साथ दो-सौ फीट तक उड़ जाते थे और सिर्फ मांजे की वजह से नीचे आ पाते थे।"

दादाजी ने यह कहानी मुझे उन्नीस गुना उन्नीस बार सुनाई थी। फिर भी हर बार मुझे उसे सुनने में मज़ा आता था। उनके माथे पर छुहारे के बीज जैसा हलका-सा घाव का निशान है। उनके अनुसार एक बार जब वे पतंग के साथ उड़ रहे थे, तब निकर सम्हालने की कोशिश में वे नीचे आकर गिरे थे और उसी ज़ख्म का वो निशान है। यह कहानी सुनते समय हमेशा मेरी आँखों के सामने बच्चे जैसे दादाजी आ जाते जो पतंग के साथ उड़ रहे हैं और नीचे गिरने पर यह कहते हुए उठ रहे हैं कि अरे कुछ नहीं हुआ। उस समय मुझे उनके माथे का वो घाव सुन्दर लगने लगता। मैं सोचता कि इस तरह का एक घाव मेरे माथे पर भी होना चाहिए। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता पर अभी तक मुझे ऐसा घाव नहीं हुआ। एक बार मैंने यह बात दादी को बताई तो वो मुस्कराकर मुझे प्यार करते हुए बोलीं, "तेरे दादाजी तेरे जैसे ही हैं।" यह सुनकर मुझे दादाजी के प्रति बेहद आदर महसूस हुआ और अचानक मुझे रोना आ गया। दादी ने मुझे फिर दादाजी के बारे में बहुत सारी मज़ेदार बातें बताईं। पर यह भी कहा कि ये बातें मैं किसी को न बताऊँ, दादाजी को भी नहीं। दादी ने मुझे खंडोबा भगवान की कसम भी डाल दी। कभी मुझे लगता कि ये सारी बातें बता दूँ। मुझे ऐसा भारीपन लगता जैसे मेरी जेबों में इमली भरी हैं और मैं उस बोझ से चल नहीं पा रहा हूँ। पर मैंने दादाजी से सुना है कि दादी के खंडोबा भगवान बहुत कड़क हैं। फिर भी मैंने दादाजी से पूछा, "आप पतंग उड़ाते समय कैसे गिर गए थे?" दादाजी ने मेरे गाल खींचे और धीरे-से बोले, "मेरा एक काम करेगा? तो बताता हूँ।"

मैं एकदम चेत गया। दादाजी के कुछ काम बहुत मुश्किल होते हैं और कभी-कभी मैंने इसके लिए दादी से मार भी खाई है। लेकिन दादाजी की आँखों में मेरे लिए अपार स्नेह देखकर काम के लिए "हाँ" कह बैठा। मेरे "हाँ" कहते ही पता नहीं कहाँ से दादाजी ने एक लाल सुर्ख गुलाब का फूल निकाला और बोले, "जा! ये अपनी दादी को दे आ!" मैं उस फूल को देखता ही रहा। घर में आज सुबह से ही कुछ अलग माहौल था। फूल को देखकर मुझे दोबारा यह महसूस हुआ। फूल बहुत ही खूबसूरत था।

वह फूल लेकर मैं अन्दर गया। दादी कुछ काम कर रही थीं। उनका मेरी ओर बिलकुल ध्यान नहीं था। मैं धीरे-से उनके पास गया। वे गुनगुना रही थीं। उनको मैंने कभी भी गाते हुए नहीं सुना था। गाते समय दादी की उम्र कम लग रही थी, माँ जैसी। मैंने गुलाब का वो फूल धीरे-से उनके सामने किया। उन्होंने उसे देखा और अचानक मुझे पास खींचकर मेरा माथा चूम लिया। फिर फूल को अपनी आँखों से छूकर मुझसे पूछा, "तेरे दादाजी ने दिया है क्या?" मुझे अचम्भा हुआ कि दादी को कैसे पता चला? मैंने उनसे पूछ ही लिया। थोड़ी देर तक दादी मेरी ओर देखती रहीं, फिर बोलीं, "मुझे इस तरह हर साल फूल मिलता है।"

मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया। मैं मूर्खों जैसे वहीं खड़ा रहा। दादी ने फूल अपने बालों में खोंस लिया। वो बहुत सुन्दर दिख रही थीं। दादी से बात करने का मन हो रहा था, पर क्या बात करूँ, समझ नहीं आ रहा था। तभी सुमी दौड़ती हुई आई और दादी से बोली, "दादी, हैप्पी बर्थ डे टू यू।" और एकदम से मेरे दिमाग की बत्ती जल गई। मेरे साथ हमेशा ऐसा ही होता है, जैसे बारात निकल जाए और घोड़ी बाद में आए। मैंने जल्दी-से दादी को हैप्पी बर्थ डे टू यू कहा और बाहर जाकर दादाजी के गले में झूल गया। मुझे इतना अच्छा लग रहा था, इतना अच्छा लग रहा था जैसे पूरे घर में उन्नीस गुना उन्नीस गुना उन्नीस फूल बिछे हों और मैं दादा-दादी का हाथ पकड़े मस्ती से उन पर चले जा रहा हूँ।

आकाश में एक घर

संजीव ठाकुर

एक गरीब आदमी था। वह हमेशा अमीरों का मज़ाक उड़ाया करता था। कभी-कभी वह राजा का भी मज़ाक उड़ाने लगता था। इस बात से राजा उस आदमी से नाराज़ रहता था।

एक बार राजा ने उस आदमी को बुलवाया और कहा, "मैंने सुना है कि तुम बहुत चतुर हो। क्या तुम मेरे लिए तीन दिन के अन्दर आकाश में घर बना सकते हो? तुम्हें जितने आदमियों की ज़रूरत होगी उतने तुम्हें मिल जाएँगे। लेकिन एक बात याद रखो, यदि तुम आकाश में घर नहीं बना सके तो मेरे सिपाही तुम्हें मार देंगे!"

"मैं आकाश में घर बना दूँगा!" उस आदमी ने कहा और अपने घर चला गया। इस समस्या का हल वह सोचने लगा। सोचकर उसने एक पतंग बनाई और उसमें एक छोटी सी घण्टी बाँध दी। एक बड़े से धागे के सहारे पतंग को एक पेड़ की ऊँची डाली से बाँध दिया।

अगले दिन लोगों ने आकाश में एक काला धब्बा देखा और घण्टी की आवाज़ सुनी। राजा ने भी वह धब्बा देखा।

वह आदमी राजा के पास आया आया और बोला, "आकाश में घर बनाने का काम मैंने शुरू करवा दिया है। आप घण्टी की आवाज़ सुन रहे हैं? मज़दूर घण्टी बजाकर कुछ चीज़ें माँग रहे हैं। आप अपने सिपाहियों से कहिए कि आकाश पर चढ़कर मज़दूरों तक वे चीज़ें पहुँचा दें!"

राजा ने पूछा, "मेरे सिपाही आकाश पर कैसे चढ़ेंगे?"

आदमी ने कहा, "वहाँ तक जाने का एक रास्ता है।"

राजा के आदेश पर सिपाही उस आदमी के साथ गए। आदमी सिपाहियों को पेड़ के पास लेकर गया पेड़ में बँधे धागे को दिखाते हुए उसने कहा, "यही वह रास्ता है जिससे तुम लोग आकाश पर जा सकते हो!"

सिपाहियों ने धागे पर चढ़ने की बहुत कोशिश की लेकिन कोई उस पर नहीं चढ़ पाया। वे राजा के पास गए और बोले, "महाराज! कोई आदमी आकाश पर नहीं चढ़ सकता!"

राजा ने जवाब दिया, "ठीक कहते हो। आकाश पर कोई नहीं चढ़ सकता।"

उसी समय वह आदमी बोल पड़ा, "ओह! महाराज! अगर आप इस बात को जानते थे तो आपने मुझे आकाश में घर बनाने को कैसे कह दिया?"

राजा इस बात का कोई जवाब नहीं दे सके।

वह आदमी पेड़ पर से पतंग उतारकर अपने घर चढ़ा।

चित्रः इन्दु हरिकुमार

1 किताबों की अलमारी के एक खाने में कई सारी किताबें रखी हैं। यदि कोई किताब बाईं ओर से चौथे स्थान और दाईं ओर से छठे स्थान पर रखी हो तो उस खाने में कुल किताबें रखी हैं?

2 सारा के पास जूस की 21 बोतलें हैं जिनमें से 7 पूरी भरी, 7 आधी भरी और 7 पूरी खाली हैं। वो अपने 3 दोस्तों में जूस व बोतल दोनों को बराबरी से बाँटना चाहती है। नापने के लिए उसके पास कोई उपकरण नहीं है। क्या तुम उसकी मदद कर सकते हो?

3 इस चित्र में एक मक्खी चार लाइनों से बने गिलास के अन्दर है। क्या सिर्फ दो लाइनों को इधर-उधर करके मक्खी को गिलास से बाहर कर सकते हैं?

4 तीन अंकों की एक ऐसी संख्या है जिसका दूसरा अंक तीसरे अंक का चार गुना है और पहला अंक दूसरे अंक से 3 कम है। हम किस संख्या की बात कर रहे हैं?

5
कोई भी व्यक्ति अपने वज़न से कितना गुना ज़्यादा वज़न उठा सकता है?

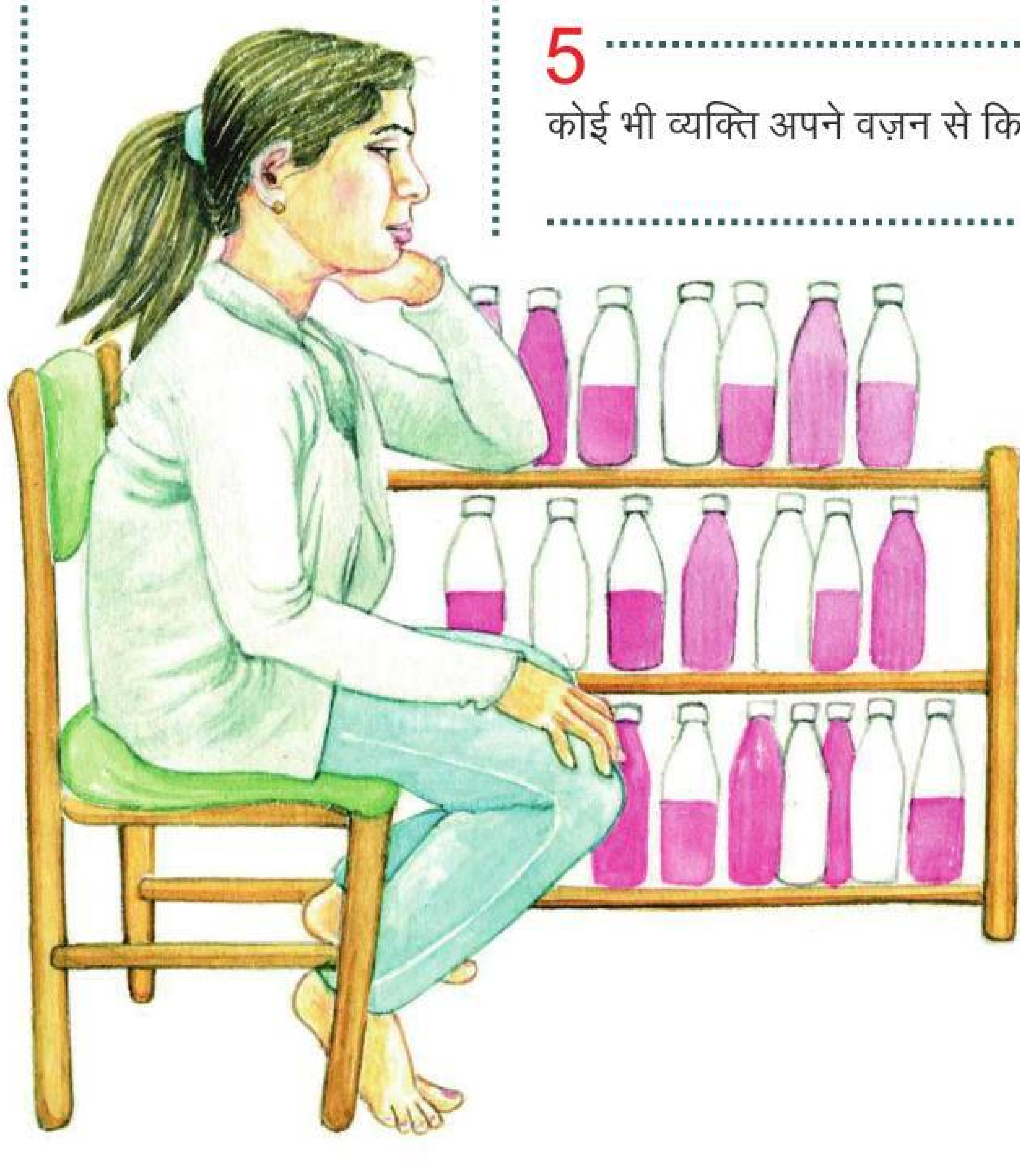

6
जड़ → पेड़ → पेटी → चोटी

यहाँ हम एक-एक अक्षर बदलते हुए "जड़" शब्द से "चोटी" शब्द तक पहुँचे हैं। इसी तरह तुम्हें एक-एक अक्षर बदलते हुए "गुलाल शब्द से शुरू करके "सरोद" शब्द तक पहुँचना है। शर्त यह है कि एक बार में तुम केवल एक ही अक्षर बदल सकते हो और हर बार बननेवाला शब्द सार्थक होना चाहिए। ऐसा तुम्हें कम से कम बार में करना है।

चित्र : दिलीप चिंचालकर

बोलीरंगोली

चुनिन्दा चौदह चित्र

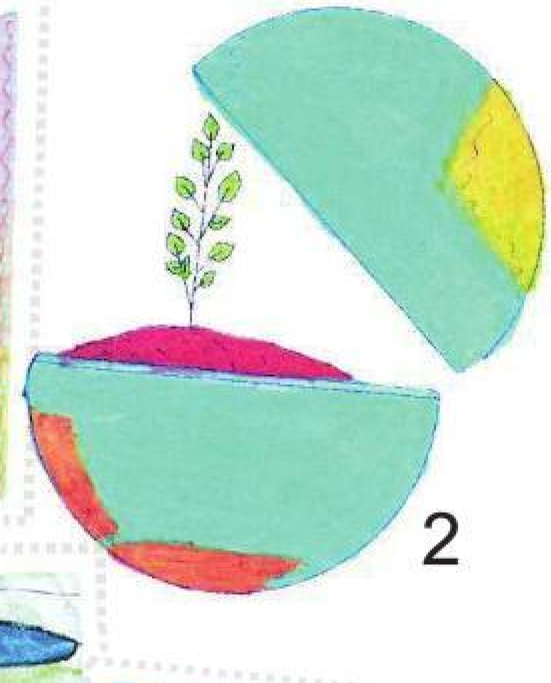

1.नौरीन मेहरा, छठी, शिक्षान्तर, गुड़गाँव, हरियाणा/ 2.अपर्णा, चौथी, एसओएस बालग्राम, भोपाल/ 3. इमराना, आठ वर्ष, दिगन्तर, जयपुर/ 4.आनन्द कुमार, किलकारी, बिहार बाल भवन, पटना/ 5.रहनुमा, 7 वर्ष, दिगन्तर, जयपुर/ 6.मेधा यादव, पाँचवीं, डीएवी पब्लिक स्कूल, गुड़गाँव, हरियाणा/ 7.मुकेश गुर्जर, पिसनगाँव, रूम टू रीड, अजमेर, राजस्थान/ 8.भाविनी शंकर, आठवीं, आर्किड स्कूल, पूना, महाराष्ट्र/9.मारज़ीना, 7 साल, दिगन्तर, जयपुर/ 10.रुखसाना बानो व फिरदोस खान, चौथी, रा. प्रा. वि. अजमेर, राजस्थान/ 11. दिव्यांशी, चौथी, कर्तव्य, धनबाद, बिहार/ 12.दिव्या खैराकर, सातवीं, आनन्द निकेतन, वर्धा, महाराष्ट्र/ 13. कादम्बिनी बर्नबाल, किलकारी, बिहार बाल भवन, पटना/ 14.श्रेया बहुगुणा, छठी, एपीएफ स्कूल, उत्तरकाशी, उत्तरांचल

चित्र पहेली

चित्रः कनक

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. / 261 / भोपाल / 2012-14

दो कविताएँ - दिविक रमेश

चित्रः अतनु राय

बहुत मज़ा

आओ बूँदो,
आकर मेरी क्यारी में
हल चलाओ
बहुत मज़ा आएगा।

बहुत मज़ा आएगा
जब छूते हुए फसलों को
निकल जाएगी हवा
इधर से उधर।

और फसलें
बिलकुल हम बच्चों-सी
खिलखिलाकर
लोटपोट हो जाएँगी।

छाता

सड़क!
हो जाओ न थोड़ी ऊँची
बस मेरे नन्हे कद से थोड़ी ऊँची।
मैं आराम से निकल जाऊँगा तब

तुम्हारे नीचे-नीचे
घर से स्कूल तक।

न मुझे धूप लगेगी, न बारिश।

हमारे घर में
नहीं है ना छाता, सड़क!

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म.प्र. से प्रकाशित एवं आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोनः 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादकः सुशील शुक्ल